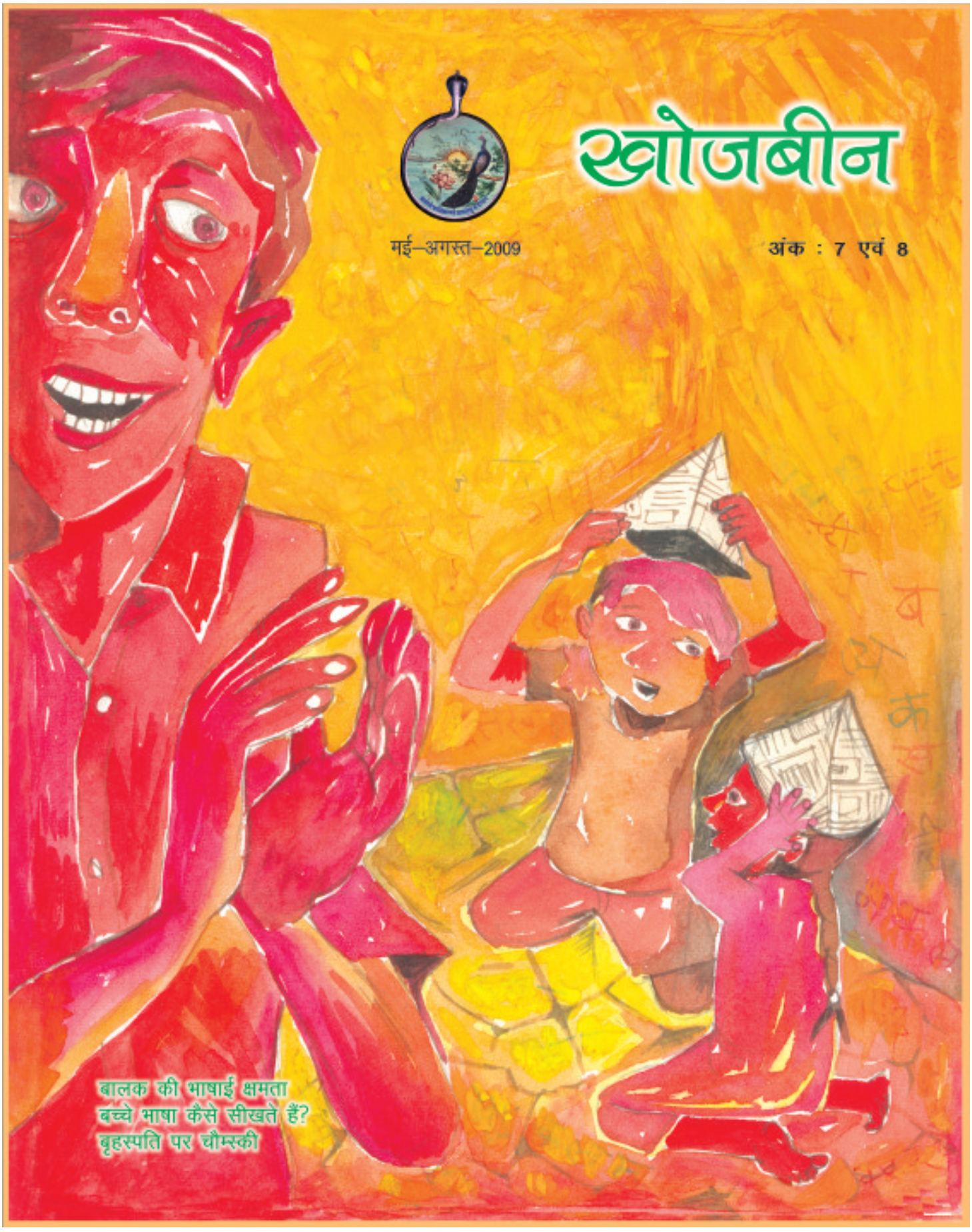

खोजबीन

मई–अगस्त–2009

अंक : 7 एवं 8

बालक की भाषाई क्षमता
बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं?
बृहस्पति पर चौम्स्की

खोजबीन

अंक–7 एवं 8

मई–अगस्त–2009

इस अंक में पढ़िए

उत्साहवर्धक सोच भाषा सीखने में मदद करती है	चन्द्रशेखर भारती	1
भाषा शिक्षण के बारे में शिक्षकों का नज़रिया	रजनी द्विवेदी, शोभा शंकर नागदा	3
सही मायनों में आख़िर 'पढ़ना' है क्या?		9
बोलना सीखना		13
भेजे में भाषा का उपकरण– मामला संगीन है	ए.के. जयसीलन	24
भाषा इन्सानों के लिए क्यों ज़रूरी है?		30
बालक की भाषाई क्षमता	हृदय कांत दीवान	36
बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं?	जीन आइचिसन	46
भाषा : पहचान व अस्मिता		53
भारतीय भाषाएं विकासशील समाज में पहचान का माध्यम	अंजनी कुमार सिन्हा	58
बृहस्पति पर चौम्स्की	जीन आइचिसन	62
ज्ञान की संरचना	रमा कान्त अग्निहोत्री	73
भाषा की प्रकृति एवं संरचना	राजेन्द्र सिंह	78

सहयोग राशि : एक अंक : पच्चीस रुपए, वार्षिक : एक सौ पचास रुपए मात्र (चैक या बैंक ड्राफ्ट – विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के नाम बनवाएं।)

परामर्श एवं प्रबंध
हृदय कांत दीवान

संपादक
के.आर. शर्मा

संपादन सहयोग
गिरीश शर्मा
कुमार अनुपम
भागचंद्र कुमावत

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

ले–आउट
इसरार अहमद

रचनाएं भेजने और पत्र–व्यवहार के लिए संपर्क करें
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, फतहपुरा, उदयपुर (राज.)
email : vbsudr@yahoo.com, फोन : 0294–2451497

सौजन्य : आईसीआईसीआई (सेंटर फॉर एलिमेंट्री एज्यूकेशन) के सहयोग से।

उत्साहवर्धक सोच किसी भी भाषा को सीखने में मदद करती है

चन्द्रशेखर भारती

'भाषा' शब्द सुनते ही हमारे मानस पटल में एक ऐसी प्रक्रिया उभरती है जिसके द्वारा हम अपने विचार दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाते हैं या पहुंचाने की सोचते हैं।

भाषाएं कई तरह से कार्य करती हैं, जैसे इशारों, शारीरिक स्थितियों, चित्रात्मक, बोलकर, लिखकर एवं मौन।

शिशु जन्म लेते ही एक नए पर्यावरण में आता है एवं रोकर अपनी पहली प्रतिक्रिया देता है। धीरे–धीरे शिशु बाह्य वातावरण से अपने आपको समायोजित करता है तथा फिर भूख लगने या सहज नहीं लगने पर रोकर मां का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। यह रुदन भी भाषा का ही एक प्रकार है। अनुभवी व संवेदनशील माताएं बालक के रुदन के अन्तर को भी समझ लेती हैं तथा तत्काल उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर उसे चुप करा देती हैं। समय के साथ बालक की सभी क्षमताएं विकसित होती जाती हैं। वह बोलना शुरू करता है। इसी दौरान स्वयं दौड़ना भी आरम्भ कर देता है। और एक दिन वह समय आ जाता है जब माता–पिता जीवनरूपी 'महासमर' में योग्य योद्धा बनाने के

लिए उसे विद्यालय भेजने हेतु तैयार हो जाते हैं। कल तक जिसे वे आंख से ओझल नहीं होने देते थे अब स्वयं पूरा दिन उसे अपने परिवार से एक अन्य परिवार में भेजने के लिए तैयार हो जाते हैं जहां की दिनचर्या वातावरण और ख़ासकर 'भाषा' भी उसके लिए नई होती है।

कई बार तो बालक स्वयं स्कूल जाने की इच्छा करता है। ऐसा वह उसके भाई–बहिनों व मित्रों को स्कूल जाते देखकर करता है। अधिकतर छात्र थोड़े डरे सहमे स्कूल में जाकर कक्षा में बैठ जाते हैं। कक्षा के वातावरण से तालमेल बिठाने के लिए इधर–उधर देखते हैं। साथियों से उनकी भाषा में बात करते हैं या उनकी वस्तुओं के बारे में रुचि लेते हैं जो कि अध्यापकों को नागवार गुज़रता है। वे उसे खड़ा होने को कहते हैं तथा अध्यापकों की भाषा प्रायः वह नहीं होती जो घर में अब तक बोलता, सुनता रहा था। ऐसे में उसके लिए बहुत मुश्किल हो जाती है। उसकी मातृभाषा का पूरा शब्दकोश उसके किसी काम का नहीं रह जाता। उस समय बालक की मनःस्थिति क्या होती होगी इस बारे में हम जानते हैं।

अतः विद्यालय के पहले दिन से ही बालक से उसकी ज्ञात भाषा में बात करने का विशेष महत्त्व है।

बालक को अपने भावी जीवन में कई भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता हो सकती है परन्तु उन्हें सीधा नहीं सिखाया जा सकता। प्राथमिक शिक्षा तक शिक्षण का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए इसमें कोई दो राय नहीं है। ऐसा करने से बालक पर भाषाओं का दोहरा भार नहीं पड़ता तथा बालक कक्षा शिक्षण को सहज रूप से स्वीकार कर सकता है। वह स्वयं शिक्षण प्रक्रिया का हिस्सा बन शिक्षण में 'रमता' है। घुलमिलकर नया सीखता है तथा पुराने अनुभवों को पुष्ट करता है।

मेरा अनुभव है कि ख़ास तौर पर बचपन में भाषा सीखना कोई दुष्कर कार्य नहीं है। मैंने अपने ही शहर उदयपुर में देखा है कि यहां बच्चे मेवाड़ी मातृभाषा में रमते–खेलते बड़े होते हुए 2 विदेशी भाषाओं को भी बोल लेते हैं। चूंकि उदयपुर में विदेशी पर्यटक खूब आते हैं अतः वे उनके बीच बड़ी सहजता से अंग्रेज़ी के अलावा अन्य पश्चिमी भाषाओं जैसे जर्मन, फ्रेन्च इटैलियन, स्पेनिश आदि में बतियाते देखे जा सकते हैं। परन्तु वहां भाषा शिक्षण उन पर थोपा नहीं जाता बालक स्वयं प्रेरित होकर ये भाषाएं सीखता है। सकारात्मक पुनर्बलन उन्हें इस हेतु प्रेरित करता है कि वे सीखें। इस दौरान विदेशी पर्यटक और उनके बच्चे भी उस पर्यटक स्थल पर वहां के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा सीखते हैं। किसी प्रकार की त्रुटि पर उन्हें शारीरिक या अन्य किसी प्रकार के दण्ड का भय भी नहीं होता।

यहां यह बात ग़ौर करने की है कि पर्यटन से जुड़े क्षेत्रों के बालक ये भाषाएं आख़िर कैसे सीख पाते हैं? इसकी वजह स्पष्ट तौर पर समझ में आती हैं कि विदेशी पर्यटक उनके घरों, उनके पड़ोस में गली मुहल्ले में रहते हैं। वे आपस में इस दौरान बातें करते हैं तथा ये बालक उन्हें देखते हैं, सुनते हैं, फिर उनकी चर्चा में स्वयं की समझ व ज्ञान के आधार पर सम्मिलित होते हैं। पर्यटकों के लिए बालकों द्वारा दी गई स्थानीय जानकारी अपेक्षाकृत छल–कपटरहित होती है तथा इसी कारण बालक उनकी भाषा सीखने हेतु प्रोत्साहित होते हैं। इस दौरान विदेशी पर्यटक और उनके बच्चे भी उस पर्यटक स्थल पर वहां के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा सीखते हैं। अब नई भाषा उनके पर्यावरण का हिस्सा बन जाती है यानी मातृभाषा के समानान्तर चलने लगती है और बालक आसानी से विदेशियों की भाषा बोलना सीख जाता है। वहां कोई लिखित शब्दकोश नहीं होता कोई व्याकरण की पुस्तक भी नहीं होती। अगर एक बार बोलना सीख लिया जाए तो थोड़े से प्रयास से लिखना भी सीखा जा सकता है।

हमारे विद्यालयों में भाषा सिखाने का तरीक़ा ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिये अंग्रेज़ी या संस्कृत को ही लें। ये भाषाएं बालक के घर में उसके आसपास, उसके घर, टी.वी. प्रोग्राम में उसे सुनने को नहीं मिलती। हम उसे सिर्फ़ परीक्षा पास करने के लिए भाषा सीखने पर ज़ोर देते हैं। नये शब्द रटने को कहते हैं जो कि दुष्कर कार्य होता है। अगर कोई भाषा बालक को सिखानी है तो उसे पहले उसके पर्यावरण का हिस्सा बनाएं।

चन्द्रशेखर भारती : ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर में वरिष्ठ व्याख्याता हैं।

भाषा शिक्षण के बारे में शिक्षकों का नज़रिया

रजनी द्विवेदी
शोभा शंकर नागदा

कई मौक़ों पर शिक्षक चर्चा के दौरान बताते हैं कि कक्षा 5 के बच्चे भी कहानी सुनाने, कविता सुनाना, अपनी बात को बोलकर या लिखकर अभिव्यक्त करना, समझकर पढ़ना इत्यादि काम कर नहीं पाते।

ये सब बातें हमें सोचने को बाध्य करती हैं कि भाषा की क्लास में ऐसा क्या होता है कि हमारे अथक प्रयासों के बावजूद बच्चों की विभिन्न भाषाई क्षमताएं विकसित नहीं हो पातीं।

सवाल यह है कि हम इसका कारण बच्चों की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि को मानें अथवा भाषा सीखने–सिखाने के तौर–तरीक़ों व उसमें निहित हमारे नज़रिये को।

पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न मौक़ों यथा कक्षा अवलोकन व प्रशिक्षणों के दौरान शिक्षकों के साथ हुई बातचीत में भाषा शिक्षण के प्रति उनके नज़रिये

के कई आयाम उभरकर आए। उनमें से कुछ की चर्चा हमने यहां इस लेख में करने की कोशिश की है।

भाषा माने क्या?

प्रायः शिक्षक ''भाषा माने क्या'' का अर्थ बहुत ही सीमित अर्थों में लेते हैं। यह पूछे जाने पर कि भाषा से आप क्या समझते हैं जवाब होता है; भाषा यानी विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम अर्थात् 'संप्रेषण का साधन।' इस बात पर कभी ग़ौर नहीं किया जाता कि जिन विचारों को संप्रेषित करना है वे कहां से व कैसे आते हैं? दूसरे शब्दों में क्या भाषा के बग़ैर हम सोच सकते हैं? कल्पना कर सकते हैं? चीज़ों को अलग–अलग पहचान सकते हैं, उनका वर्गीकरण कर सकते हैं? विश्लेषण कर सकते हैं? हम भाषा का उपयोग कहां–कहां करते हैं, कैसे करते हैं, हमारा व भाषा का रिश्ता क्या है, यदि इन पहलुओं के बारे में गहराई से सोचा जाए तो यह सूची और लंबी होती जाएगी।

उदाहरण के लिए यदि हम किसी नए व्यक्ति से मिलते हैं, उससे 4–5 मिनट बात करने के दौरान ही हमें पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति पंजाबी है अथवा बंगाली अथवा गुजराती...। यानी इंसान के व्यक्तित्व, उसकी पहचान, उसकी क्षमताओं का विकास इत्यादि सभी बातें भाषा से जुड़ी हुई हैं।

इसका अर्थ यह है कि हममें से अधिकांश लोग जो मानते हैं कि भाषा यानी ''संप्रेषण का माध्यम'', कुछ हद तक ही ठीक है। कृष्ण कुमार ने अपनी पुस्तक 'बच्चों की भाषा और अध्यापक' में कहा है : ''हममें से कई लोग भाषा को संप्रेषण का साधन मानने के इतने ज़्यादा आदी हो चुके हैं कि हम सोचने, महसूस करने और चीज़ों से जुड़ने के साधन के रूप में भाषा की उपयोगिता को अक्सर भूल जाते हैं। भाषा के उपयोग का यह बड़ा दायरा उन लोगों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है जो छोटे बच्चों के साथ काम करना चाहते हैं। लेकिन भाषा का यह सीमित अर्थ भी कक्षा तक आते–आते कहीं गुम हो जाता है और उसे एक ऐसे विषय के रूप में पढ़ाया जाता है जिसके द्वारा बच्चों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी जा सके।''

संप्रेषण के अर्थ के हिसाब से देखें तो भी कम–से–कम बच्चों को कक्षा में अपनी बात कहने, दूसरों की बात सुनने, प्रश्न उठाने, तर्क करने इत्यादि की स्वतंत्रता होनी चाहिए, पर कक्षाओं में तो यह नहीं होता। कक्षा में जो होता है वह है; अध्यापक जो कहे उसको बिना विचारे सुनना, पाठ्यपुस्तक के अध्यायों के पीछे दिये गये अभ्यास के प्रश्नों के 'सही' उत्तर याद करके उनको हूबहू परीक्षा में वैसा ही लिखना। इसके लिए तो पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता ही नहीं होती। उत्तर याद करने के लिए बच्चे कुंजियों का सहारा लेते हैं और इसी वजह से कुंजियों का बाज़ार चलता है।

यह थी संप्रेषण की बात जो कि वास्तव में होती ही नहीं। तो बाक़ी अन्य पहलुओं का क्या हो यह हमें सोचना होगा?

इसी से संबन्धित दूसरा बिन्दु है भाषा सीखने–सिखाने के उद्देश्य व प्रक्रिया।

किसी भी विषय को सीखने–सिखाने के उद्देश्य सीधे इस बात से जुड़ते हैं कि हमारी उस विषय की समझ क्या है। विषय की समझ न केवल यह निश्चित करने में मदद करती है कि हमें पढ़ाना क्या है वरन् यह भी निर्णय लेने में मदद करती है कि पढ़ाना कैसे है? चूंकि शिक्षकों की ''भाषा क्या है?'' इस प्रश्न की समझ सीमित है, यही समझ भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करने में भी परिलक्षित होती है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि भाषा सीखने–सिखाने के उद्देश्य हैं–

- ध्वनि रूपों के शुद्ध उच्चारण को समझना।
- शब्दों के शुद्ध उच्चारण को समझना।
- ध्वनि रूपों का उच्चारण करना।
- शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना।
- वर्ण पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- शब्द पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- वर्णों और शब्दों को उचित आकार, उचित क्रम में लिखने की क्षमता विकसित करना। (सुन्दर लिखावट)
- विराम चिह्नों का प्रयोग करते

हुए लिखने की क्षमता विकसित करना।

- वाक्य पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- व्याकरण का सटीक उपयोग।
- और इनके साथ–साथ नैतिक मूल्यों का विकास करना भी भाषा शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य होता है।

पाठ्यपुस्तक निर्माण और भाषा सीखने–सिखाने के तौर–तरीक़े भी इन्हीं उद्देश्यों पर आधारित होते हैं। फलस्वरूप भाषा की कक्षा सिर्फ़ वर्ण, शब्द, वाक्य बोलना, पढ़ना, लिखना सिखाने पर केन्द्रित होकर रह जाती है। न तो उसमें कविताओं व कहानियों के लिए कोई स्थान होता है न बच्चों को बातचीत के मौक़े होते हैं और न ही अपनी बात को अभिव्यक्त करने के। चाहे वह मन से लिखना हो अथवा कहना।

भाषा तथा भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को लेकर शिक्षकों के नज़रिये की बात हमने की। इसके अलावा भी कई दृष्टिकोण हैं जो शिक्षकों से बातचीत के दौरान परिलक्षित भी होते हैं, जैसे–

भाषा टुकड़ों–टुकड़ों में व चरण दर चरण सीखी जाती है।

शिक्षक भाषा को एक समग्र रूप में देखने की बजाय टुकड़ों–टुकड़ों में देखते हैं। अतः मानते हैं कि भाषा टुकड़ों–टुकड़ों को जोड़कर सीखी जाती है। चाहे ये टुकड़े फिर सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने के हों अथवा अक्षर, मात्रा, शब्द व वाक्य। यदि हम फिर से उद्देश्यों पर जाएं और उन्हें गहराई से विश्लेषण करें तो उनमें भी यह विभाजन साफ़–साफ़ दिखाई देता है जैसे

- पहले बच्चों को ध्वनियों का उच्चारण समझना सीखाना है।
- फिर साफ़ व स्पष्ट बोलना
- उसके बाद अक्षर व वर्ण पढ़ना और उसके बाद लिखना।

शिक्षकों के अनुसार भाषा सिखाने का तात्पर्य है; सुनना, बोलना, पढ़ने व लिखने के कौशल का विकास। उनके अनुसार इन कौशलों के विकास की प्रक्रिया कुछ ऐसी होती है–

यद्यपि बच्चा अपने आस–पास हो रही बातचीत को सुनता रहता है लेकिन भाषा वह मां से ही सीखता है। मां बार–बार बच्चे को सुनाने के लिए बोलती है, जैसे– बोलो मां, मां और बार–बार भी ध्वनि से परिचय होने के फलस्वरूप बच्चा मां शब्द सीख जाता है और मां बोलना शुरू करता है। इसी तरह उसको अन्य ध्वनियों पापा, दादा इत्यादि से परिचय करवाया जाता है। और फिर वह ये शब्द भी बोलने लगता है। ये शब्द छोटे व सरल होते हैं अतः बच्चा जल्दी सीख जाता है। फिर बारी आती है लम्बे व कठिन शब्दों व वाक्यों की। माता–पिता व रिश्तेदार बार–बार इन शब्दों को बच्चे के सामने दोहराते रहते हैं। इसी तरह बच्चा शब्द व वाक्य बोलना सीख जाता है।

उनका यह दृढ़ विश्वास होता है कि बच्चा बग़ैर सुने नए शब्द व वाक्य बोल ही नहीं सकता। यानी पहले सुनने की प्रक्रिया होगी फिर बोलने की।

पढ़ने व लिखने की प्रक्रिया भी कुछ इस तरह ही होती है। पढ़ने का मतलब होता है अक्षरों को पहचानना और ध्वनियों का उच्चारण कर पाना। और इसलिए बच्चे पढ़ने के नाम पर वर्णमाला को रटते रहते हैं, कविताओं व कहानियों को शब्दशः दोहराते रहते हैं।

लिखना भी एक स्वतंत्र कौशल की तरह मशीनी ढंग से सिखाया जाता है। बच्चों को अक्षरों की नक़ल के लिए कहा जाता है। शब्दों की नक़ल करवाई जाती है। हम यदि यह सोचें कि किसी एक ही काम को बार–बार करने को दिया जाए तो कैसा महसूस करेंगे। लेकिन शुरुआती एक साल में भाषा शिक्षण के नाम पर बच्चे यही क़वायद करते रहते हैं।

इन चारों कौशलों को अलग–अलग देखने की वजह से ही शिक्षण प्रक्रिया बोझिल उबाऊ व बार–बार रटने वाली हो जाती है। यदि पढ़ना व लिखना बच्चों के अनुभव व बातचीत से शुरू होगा तो वह बच्चों के लिए अर्थपूर्ण होगा। जैसे यह सब एक दूसरे से अलग–अलग प्रक्रियाएं हों। लेकिन वास्तव में ये प्रक्रियाएं साथ में चलती हैं। हम जब बोलते हैं तब क्या स्वयं को सुनते नहीं हैं। इसी तरह क्या अक्षर व शब्दों को पढ़ना सीखना लिखने की प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं देता? इन प्रश्नों के बारे में कोई विचार नहीं करता।

शिक्षकों के अनुसार तो भाषा सीखने की प्रक्रिया कुछ इस तरह होती है। माता–पिता बोलते हैं मामा, पापा अथवा कोई अन्य शब्द तो पहले बच्चे कई बार इस शब्द को सुनते हैं और फिर एक दिन बोलना शुरू करते हैं। इसी तरह वे एक–एक करके शब्द सीखते हैं और फिर शब्दों को मिलाकर वाक्य। भाषा को टुकड़ों–टुकड़ों में पढ़ाने का एक उदाहरण देखिए–

शिक्षक कक्षा में आए व बच्चों को डांटकर चुप कराया। शिक्षक ने बोर्ड पर वर्णमाला के कुछ अक्षर यह बताने के लिए लिखे कि अक्षर से शब्द का निर्माण कैसे होता है और शब्द से वाक्य कैसे बनते हैं।

घ, र, च, ल, अ, ब, न, भ,। घर, चल–घर चल

अ, म, न, घर, चल – अमन घर चल

चरण घर, चल – चरण घर चल

उसके बाद शिक्षक ने बोर्ड पर लिखी वर्णमाला के अक्षर व अक्षर से बने शब्द और शब्द से बने वाक्यों को बच्चों द्वारा पढ़वाया। वह प्रत्येक बच्चे को बोर्ड पर बुलाते और बोर्ड पर लिखे हुए को पढ़वाते और साथ में अन्य बच्चों से उन शब्दों को दोहराते। इस प्रकार पीरियड चलता रहता है।

पूरी प्रक्रिया अक्षरों व शब्दों की पहचान पर ही केन्द्रित रहती है और इनकी पहचान पर इतना ज़ोर होने से वाक्य का अर्थ ही ग़ुम हो जाता है।

भाषा व बोली

एक और महत्त्वपूर्ण मसला है भाषा व बोली का। जिस भी मंच पर भाषा शिक्षण की बात होती है यह मसला जरूर उठता है। शिक्षक बच्चों द्वारा बोली जानेवाली भाषा को दूसरे दर्जे की समझते हैं क्योंकि उनका मानना है कि भाषा तो वह होती है जिसका अपना साहित्य व व्याकरण होता है, उसकी लिपि होती है, वह मानकीकृत व शुद्ध होती है। बच्चे जो भाषा अपने से घर लेकर आते हैं वह तो भाषा नहीं है क्योंकि वह तो एक क्षेत्र विशेष के लोगों द्वारा बोली जाती है उसका न तो साहित्य है न व्याकरण न लिपि।

अतः स्कूल के पहले दिन से ही बच्चों को मानकीकृत और शुद्ध भाषा सिखाने का प्रयास किया जाता है। और यदि बच्चे अपनी घरेलू भाषा का प्रयोग विद्यालय में करते हैं तो उन्हें डांट दिया जाता है। बच्चे यह समझ नहीं पाते कि उन्हें डांटा क्यों जा रहा है? घर में आस–पास परिवेश में हर कहीं वही भाषा बोली जाती है पर स्कूल में अध्यापक के सामने जब वे बोलते हैं तो ग़लत क्यों हो जाते हैं। बात यहीं ख़त्म नहीं होती। जैसा कि हमने पहले भी बात की भाषा व्यक्ति की संस्कृति व पहचान होती है। बच्चे द्वारा अपनी घरेलू भाषा का उपयोग न करने देना उसकी पहचान व संस्कृति पर भी सीधा प्रहार होता है। बार–बार डांट खाने के कारण जो बच्चे इतनी बातचीत करते हैं, धीरे–धीरे बात करना ही बन्द कर देते हैं।

यदि भाषाविज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा व बोली में कोई फ़र्क़ नहीं होता। भाषा का भी व्याकरण होता है बोली का भी। यह बात ज़रूर है कि वह व्याकरण लिखित रूप में उपलबध नहीं होता। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि व्याकरण होता ही नहीं। यही बात साहित्य पर भी लागू होती है। हो सकता है कि कई बोलियों (भाषाओं) में लिखित साहित्य न हो लेकिन मौखिक साहित्य ज़रूर होता है। दूसरा भोजपुरी, अवधि, मैथिली जिन्हें हम बोलियां कहते हैं उनमें तो बहुत साहित्य उपलब्ध है। भाषा का क्षेत्र विस्तृत है अथवा बोली का यह आप सोचिये कि हिन्दीभाषी लोग ज़्यादा हैं अथवा भोजपुरी। और जो भी लोग हिन्दी बोलते हैं वे कितनी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं। और रही लिपिवाली बात तो दुनिया की किसी भी भाषा को किसी भी लिपि में लिख सकते हैं उदाहरण के लिए–

Ram	Ghar	Jata	hai
राम	घर	जाता	है

हिन्दी भाषा को आप रोमन लिपि में लिख सकते हैं। और आजकल तो मोबाइल, कम्प्यूटर सभी पर हम यही करते हैं। अंग्रेज़ी भाषा को आप देवनागरी में लिख सकते हैं।

राम	इज़	गोइंग
Ram	is	going

अध्यापक मानते हैं कि एक भाषा दूसरी भाषा सीखने में बाधक होती है। उदाहरणार्थ यदि बच्चा मेवाड़ी (क्षेत्रीय भाषा) जानता है तो उसका नकारात्मक प्रभाव उसके हिन्दी (मानकीकृत भाषा) सीखने पर पड़ेगा। लेकिन होता इसका उल्टा हैं। भाषा शिक्षा के द्वारा हम बच्चे की जिन क्षमताओं को विकसित करना चाहते

हैं यथा सोचने–विचारने, अपनी बात कहने, तर्क करने, विश्लेषण करने वो तो उनकी अपनी भाषा में आसानी से विकसित हो सकती है और फिर यह कौशल दूसरी भाषा में स्थानान्तरित किया जा सकता है। रही उच्चारण व मानकीकृत भाषा की बात तो उपयुक्त संदर्भ व वातावरण मिलने पर बच्चे स्वयं ही धीरे–धीरे यह सब सीख जाते हैं।

भाषा नक़ल से सीखी जाती है

शिक्षकों की एक और मान्यता है कि बच्चे भाषा तब सीखते हैं जब उन्हें वह भाषा सिखाई जाती है। यानी उनके सामने ध्वनियों, शब्दों का उच्चारण बार–बार किया जाता है तथा वे नक़ल करके यह सब सीख जाते हैं। यह मान्यता इतनी दृढ़ है कि कक्षा में भी बच्चों को इसी तरह भाषा सिखाई जाती है। ऐसी दो–एक कक्षा का एक उदाहरण देखिए–

कक्षा–1 में बच्चे बैठे हुए हैं। प्रथम कालांश लगता है। शिक्षिका कक्षा में आती है व कुर्सी पर बैठ जाती हैं। थोड़ी देर बाद बच्चों से कहती हैं चलो, अपनी–अपनी स्लेट या कॉपी लेकर मेरे पास आओ, हम हिन्दी पढ़ेंगे।

बच्चे एक–एक करके अपनी स्लेट या कॉपी लेकर उनके पास जाते हैं। वह बच्चे की स्लेट पर 3–4 कॉलम बनाती हैं व एक कोने में 'अ' लिखकर बच्चे से कहती हैं ऐसे ही और बनाओ। एक अन्य बच्चे की स्लेट पर वह 'आ' लिखती हैं और उसे भी यही निर्देश देती हैं कि ऐसे ही और बनाओ। इसी तरह वह कक्षा के सभी बच्चों को एक–एक वर्ण लिखने को देती हैं, जब बच्चे दिए गए वर्ण को लिख लेते हैं तो वह दूसरा वर्ण लिखने को दे देती हैं। इसी तरह कक्षा में कार्य चलता रहता है।

इस पूरे समय में एक बार कुछ ऐसा हुआ जो कुछ हटकर था। वह था बार–बार शिक्षिका द्वारा वर्ण लिखकर लाने को कहने पर एक बच्चे ने उनसे कहा मुझे नहीं लिखना है। कुछ और कराओ। लेकिन शिक्षिका के पास कुछ और कराने को नहीं था। अतः उन्होंने एक नया वर्ण फिर से बच्चे को लिखने के लिए दे दिया।

अब इस बात पर ग़ौर करें कि भाषा सीखने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे तुतलाते हैं। क्या हम उन्हें तुतलाना सिखाते हैं? वयस्क तो तुतलाकर बोलते नहीं ताकि बच्चों को उनकी नक़ल करने का मौक़ा मिले व बच्चे वैसा बोलना सीखें। बच्चे नित नए शब्द व वाक्य बनाते हैं क्या हम प्रत्येक वाक्य उनके सामने बोलते हैं? ताकि वे उसकी नक़ल कर सकें और सीख सकें। क्या हम कभी बच्चे को बोलते हैं ''पापा मुझे मोटरसाइकिल पर घूमने जाना है।''

पापा चॉकलेट खानी है।

बच्ची व वयस्क की बातचीत का उदाहरण देखिए।

मेरे दोस्त की बच्ची (3 साल) व उसकी बुआ बातचीत कर रहे थे

बुआ : बोलो मैं अच्छी हूं

बच्ची : मैं अच्छी हूं

बुआ : मैं लड़की हूं

बच्ची : मैं लड़की हूं

बुआ : मैं गन्दी हूं

बच्ची : आप गन्दे हो।

अब आप ही सोचिए इस बच्ची को कैसे पता चला कि उसे अपने–आप को गन्दा नहीं कहने के लिए वाक्य में कहां व क्या–क्या परिवर्तन करने होंगे? वह यह कहना कैसे सीखी होगी नक़ल से अथवा आपके बताने से अथवा ...?

भाषा सिखाने का एक मात्र साधन पाठ्यपुस्तक है

बच्चों को सिर्फ़ पाठ्यपुस्तक में दी गई विभिन्न रचनाओं को पढ़ना है और वह भी दिए गए क्रम में यानी पहले अध्याय कि फिर दो... तीन बच्चे अपनी इच्छा से चुनकर पाठ भी नहीं पढ़ सकते। पाठ पढ़ने के बाद होता है उसके पीछे दिए गए प्रश्नों के उत्तरों को याद करना।

बच्चों के इर्द–गिर्द जो भाषाई संदर्भ उपलब्ध है उदाहरण के तौर पर पत्रिकाओं, अख़बारों, विज्ञापनों में लिखे गये विभिन्न निर्देश, सड़कों पर लिखे गये विभिन्न निर्देश इत्यादि कई जगहों पर भाषा का प्रयोग होता है लेकिन इन पर किसी का ध्यान नहीं जाता।

इसके बाद आती है साहित्य की बात। भाषा के वृहद् साहित्य विशेषकर बच्चों की उम्र के लायक साहित्य से उनका

कोई परिचय नहीं होता। कक्षा–कक्ष अवलोकन के दौरान हुए एक अनुभव को यहां बांटना चाहेंगे। हमने बच्चों से पूछा कहानी सुनोगे या कविता? उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। अतः उन्हें एक कहानी सुना दी। दूसरे दिन फिर उसी कक्षा में जाने पर बच्चों ने कहा हमें कविता सुनाइए। कविता सुनाना शुरू किया तो उनका कहना था कलवाली कविता सुनाइए। तात्पर्य यह है कि पहले तो हम बच्चों को विभिन्न तरह के साहित्य से परिचय नहीं करवाते और बाद में उन्हें विभिन्न विधाओं यथा कविता, कहानी, निबन्ध ... क्या–क्या प्रमुख बातें होती हैं यह याद करवाते रहते हैं।

बार–बार यह बातचीत होती है कि भाषा शिक्षण का उद्देश्य पाठ्यपुस्तक के पाठों व उनमें दिए गए अभ्यासों को कर लेना मात्र नहीं है वरन् उसका उद्देश्य है कि बच्चे उनके स्तर के अनुरूप वह सभी तरह की सामग्री पढ़ पाएं चाहे वे कविता या कहानी की किताबें हों या अख़बार अथवा सड़कों, विभिन्न स्थानों पर लिखे गये निर्देश। वे किसी बातचीत का हिस्सा बन पाएं व संवाद कर पाएं। अपने मन से किसी विषय पर लिख पाएं। पाठ्यपुस्तक में कुछ मदद ज़रूर मिलती है लेकिन उसकी भी अपनी सीमाएं होती हैं। अतः शिक्षक को यह सोचना होगा कि बच्चों में भाषा के प्रयोग की क्षमताएं बढ़ाने के लिए उन्हें पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त क्या–क्या करने की आवश्यकता है।

बच्चों की क्षमताओं में विश्वास

प्रायः शिक्षक यह मानते हैं कि बच्चों का सीखना स्कूल में ही प्रारंभ होता है। स्कूल में आने से पहले बच्चों को कुछ नहीं आता। प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों से हुई बातचीत में उनका कहना था कि शहरी बच्चे तो फिर भी कुछ पढ़ना लिखना जानते हैं लेकिन गांव के बच्चे, ग़रीब बच्चे जिनके माता–पिता अनपढ़ हैं वे तो कुछ भी नहीं जानते। उन्हें तो सब कुछ स्कूल में आकर ही सीखना होता है।

असल में भाषाशिक्षण की कक्षाओं का उद्देश्य है कि बच्चे अपनी बात को कह सकें, दूसरे की बातों को सुनकर या पढ़कर अपनी टिप्पणी दे सकें, कहानियों और कविताओं को पढ़कर उसका रस ले सकें। उन कहानियों और कविताओं में अपनी छवि देख सकें या अपने आपसे जोड़ सकें। भाषा सिखाने के केन्द्र लिपि, वर्तनी, सुन्दर लिखाई व व्याकरण बन जाते हैं। इतना ही नहीं भाषा की कक्षा में भाषा से खेलने, उसमें डूबने, उसे अहसास करने और आत्मसात करने का अवसर ही नहीं रहता है। असल में बात यह है कि यह सब कुछ करने के लिए स्कूलों में इतना धैर्य कहां, वे तो जल्द से जल्द सिखाने में लगे रहते हैं। इसके अलावा शिक्षक का पूरा ध्यान कक्षा में बच्चों को शांत करने और उच्चारण ठीक करने में रहता है। कक्षा–कक्ष में बच्चों को बातचीत करने से रोका जाता है। जबकि बच्चों की बातचीत कक्षा–कक्ष या अध्ययन–अध्यापन के लिए एक संसाधन बन सकता है। शिक्षक को यह अहसास नहीं है कि अगर बच्चों को छोटी–छोटी टोलियों में बांटकर उन्हें किसी विषय–वस्तु पर बातचीत का अवसर दिया जाए तो उससे काफ़ी कुछ समस्या का समाधान ऐसे हो ही जाएगा।

हमें लगता है कि भाषा की कक्षा में भाषा सिखाते समय दो–तीन बातों को अमल में लाए तो ज़्यादा अच्छा होगा। पहली बात पढ़ने–लिखने की जो सामग्री हो वह सार्थक हो और बच्चे के स्तर की हो।

दूसरी बात यह है कि जो सामग्री दी जाए वो परिचित भाषा में हो। तीसरी बात शिक्षक बच्चों के साथ सार्थक संवाद करें, उनकी बातों को प्यार से सुनें और उसे लोगों की बातचीत सुनने का मौका भी दें ताकि वह अपने लिए कुछ व्याकरण के नियम और शब्द स्वयं से ढूंढ़ सके। आख़िरी बात यह है कि भाषा को अक्षर, उच्चारण, व्याकरण आदि में बांटने से कोई मतलब नहीं निकलता है। ना ही ये सब किसी निश्चित क्रम में सीखे जा सकते हैं। भाषा सीखने का एक ही तरीक़ा है उसका ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग किया जाए जैसे– बोलने में, तर्क करने में, कल्पना करने में, सृजन करने में। पढ़ने–लिखने इत्यादि के पर्याप्त अवसर मिले तो भाषा सीखना कोई मुश्किल काम नहीं है।

रजनी द्विवेदी, शोभा शंकर नागदा : विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र में कार्यरत हैं।

सही मायनों में आख़िर 'पढ़ना' है क्या?

निशि कक्षा 3 की विद्यार्थी है। उसकी अध्यापिका के अनुसार वह पढ़ना अच्छी तरह से सीख रही है। नीचे किसी गद्य खंड की दो पंक्तियाँ दी गई हैं। निशि इन पंक्तियों को किस तरह पढ़ती है, प्रस्तुत है उसकी एक झलक–

''बरसात आनेवाली थी। शांति अभी घर नहीं आई थी।''

निशि इन पंक्तियों को कुछ इस तरह से पढ़ती है– ''बस का ब रस्सी का र सरौते का स उसमें आ का डंडा फिर तकली का त बना ब... र... सा. .. त। आम का आ नल का न एड़ीवाली मात्रा। बना आने, वा का व उसमें आ का डंडा फिर लट्टू का ल और उसमें बड़ी ई की मात्रा मतलब के वाली। फिर थन का थ और बड़ी ई की मात्रा हो गया थी। शरीफ़े का श उसमें पड़े दो डंडे

फिर नल का न तकली का त...।

क्या आप निशि की पठन शैली को पहचान पाए हैं? किसी भी शब्द को पढ़ने के लिए वह रटी हुई वर्णमाला के अक्षरों को सामने लाती है, फिर अक्षर को जिस शब्द से जोड़कर रटवाया गया था, उसी अक्षर और शब्द को बोलकर कोई नया शब्द पढ़ पाती है। जैसे– बरसात में ब की पहचान के लिए बस का ब रस्सी का र सरौते का स फिर आ का डंडा और तकली का त। तभी कहीं जाकर बरसात 'शब्द' से पहचान बन सकी है। अभी केवल शब्द से ही पहचान बन पाई है। इस शब्द के अर्थ से जुड़ने का भी यहां कोई भाव है, इसमें संदेह है। क्या हम कह सकते हैं कि निशि पढ़ना सीख गई है या सीख रही है?

मनोज कक्षा चार का विद्यार्थी है। वह कुछ इस तरह से पढ़ता है–

'ब र स आ त बरसात आ। आने वा– ली ई वाली थ, थी है। यानी कि शब्द के हर अक्षर पर अलग–अलग ज़ोर देकर बोलना फिर शब्द को एक साथ बोलना। क्या इसे भी पढ़पाने की श्रेणी में रखा जा सकता है?

इमरान पांचवीं कक्षा का विद्यार्थी है। उसका पठन–कौशल कुछ भिन्न है। पाठ्यपुस्तक के किसी भी पाठ का नाम लीजिए, तुरत–फुरत उस पाठ को खोलकर फर्राटेदार अंदाज़ में पाठ पढ़ जाएगा, परंतु पाठ्यपुस्तक से इतर कोई भी पाठ्य सामग्री पढ़ने के लिए दे दी जाए, तो पढ़ना तो दूर की बात अक्षरों की पहचान भी नहीं हो पाती। यह किस तरह का पठन कौशल है? पुनः तीसरी कक्षा में आते हैं। भानु को पढ़ने के लिए एक वाक्य दिया गया है, ''वह दौड़कर बस में चढ़ गया।'' इस वाक्य के साथ एक चित्र दिया गया था, जिसमें एक छोटा–सा बच्चा भागती हुई मुद्रा में बस पर चढ़ने की कोशिश में था। भानु ने इस वाक्य को पढ़ा, ''व ह ब स म च ढ़ ग या''

यही वाक्य सुनीरा को भी पढ़ने के लिए दिया गया। सुनीरा का ध्यान लिखे हुए पर था या चित्र पर, यह आप तय करें। उसने वाक्य को इस तरह से पढ़ा, ''बच्चा भागकर बस में चढ़ गया''।

पीयूष चौथी कक्षा में है। वह भी तस्वीर को देखकर और शायद कुछ अक्षरों और शब्दों को पहचान कर अपना ही 'पाठ्य' बना लेता है। जामुनी पढ़ तो लेती है, उसे पढ़े जा रहे अक्षरों, शब्दों और मात्राओं की भी पहचान है, पर पढ़े गए से भाव/अर्थ क्या निकला, यह अभी उसे पता नहीं। इसीलिए कहानी पढ़ने की उत्सुकता होने पर भी वह यही कहेगी, ''आप पढ़कर सुनाओ, पहले आप पढ़कर सुनाओ।'' जबकि विद्यालयी शिक्षा के इस स्तर (पांचवीं कक्षा) तक आते–आते उसे स्वयं ही पढ़कर कहानियों का आनंद लेना चाहिए।

आपके सामने बच्चों की पठन–शैलियों की कुछ बानगियां यहां प्रस्तुत कीं। किस बच्चे के विषय में आप कहेंगे कि वह सही मायनों में पढ़ पा रही/रहा है? या फिर सभी के लिए कहा जा सकता है कि 'पढ़ तो आख़िर सभी रहे हैं।'

कौन सही मायनों में पढ़ पा रहे हैं या नहीं, यह तय करने से पहले यह समझने का प्रयास करते हैं कि 'पढ़ने' का मतलब आख़िर है क्या? विचारकों और भाषाविदों ने पढ़ने के संदर्भ में कुछ इस तरह से अपने मत प्रस्तुत किए हैं–

- लिखे हुए से अर्थ गढ़ना ही पढ़ना है।
- पढ़ने का अर्थ है लिखे हुए से धारणाओं को गढ़ना और साथ ही विचारों को आपस में जोड़ पाना और उन्हें अपनी स्मृति में रखना।
- पढ़ना सिर्फ़ वर्णमाला की पहचान, शब्द तथा वाक्य को बोल भर पाना नहीं है, बल्कि इसके आगे बहुत कुछ और भी है। यानीकि लिखे हुए के अर्थ को समझकर अपना नज़रिया बनाना या फिर अपनी निजी समझ विकसित करना है।
- शब्द के हिज्जे करके बोलना 'पढ़ना' नहीं है। पढ़ने का अर्थ है, लिखे हुए के साथ संवाद करना, अपने अनुभवों एवं सैद्धांतिक संरचना के सांचे में लिखे हुए को ढालना।
- पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नहीं है, इसमें शामिल है अक्षरों की

आकृतियां और उनसे जुड़ी ध्वनियां, वाक्य–विन्यास, शब्दों और वाक्यों के अर्थ और साथ ही अनुमान लगाने का कौशल।

- पढ़ने में महत्त्वपूर्ण है लिखी हुई जानकारियों या संकेतों की बानगी ग्रहण करना।

यदि हम पढ़ने से संबंधित उल्लिखित परिभाषाओं के तनिक भी निकट जा पाते हैं तो स्वतः ही निर्णय ले पाएंगे कि निशि, मनोज, इमरान, भानु और जामुनी इनमें से कोई भी अभी पढ़ना नहीं जानते। दरअसल, जब हम शब्दों के अलग–अलग हिज्जे करते हैं यानीकि टुकड़े–टुकड़े में किसी शब्द फिर वाक्य को पढ़ते हैं तो हमारा मस्तिष्क लिखी हुई सामग्री की संपूर्ण मात्रा या वज़न पर ध्यान न देकर अलग–अलग शब्द, उसके टुकड़े पर ध्यान देता है। इससे मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता है और अर्थ ग्रहण करने की क्षमता तो कहीं खो ही जाती है। एक वाक्य के सारे शब्दों पर फिर शब्दों के अलग–अलग अक्षरों पर ध्यान देना अर्थ से कहीं दूर, बहुत दूर ले जाने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पढ़ने से आनंद पाना तो बहुत दूर की बात है, 'पढ़ना' भी ठीक से नहीं आ पाता है।

बच्चों को सही तरीक़े से पढ़ना सिखाने या 'पढ़ने' की क्षमता विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि बच्चों को 'डीकोडिंग' से दूर रखा जाए। 'डीकोडिंग' से मतलब है शब्द को टुकड़ों में बांटकर पहचानना फिर उसे बोल पाना या पढ़ पाना। विद्यालयी शिक्षा में भाषा के संदर्भ में 'डीकोडिंग' और उस पर आधारित विधियां जैसे– वर्णमाला, उच्चारण या शब्द बोलना जैसी विधियां (?) बहुत ही लोकप्रिय हैं।

इनके लोकप्रिय होने के दो मुख्य कारण हो सकते हैं, पहला तो यही कि शायद शिक्षक 'पढ़ने' के सही मतलब को नहीं समझ पाए हैं और तदनुसार पढ़ना सिखाने की सही विधियों की जानकारी हासिल नहीं कर पाए हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण शायद यही हो कि इस तरह से पढ़ाना उन्हें अधिक सुविधाजनक लगता हो। (जबकि असल मायने में इस तरह से पढ़ना सिखाने में शिक्षक ओर विद्यार्थी दोनों पर ही समय और मेहनत का अतिरिक्त बोझ पड़ता है।) पारंपरिक विधियों से पढ़ना सीखनेवाले बच्चे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं और इस तरह से शब्दों का अर्थ ग्रहण करने की मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज़्यादा बोझ डाल देते हैं। सही तरीक़े से पढ़नेवाले बच्चों की आंखें ऐसा बोझ नहीं डालने देतीं क्योंकि वे पन्ने पर अंकित ग्राफ़िक सूचनाओं के एक सीमित, चुने हुए अंश से जूझती हैं। वे किसी अक्षर के पूरे आकार पर ध्यान नहीं देते और न ही वे एक शब्द के सारे अक्षरों या एक वाक्य के सारे शब्दों पर ध्यान देते हैं पढ़ते समय उनकी आंखें लिखी हुई सामग्री के छोटे से अंश पर ग़ौर करती है, शेष भाग अनुमान के ज़रिए ग्रहण किया जाता है। अनुमान का आधार होता है अक्षरों की आकृतियां, शब्द, उनके अर्थ और उनके संयोजन तथा दुनिया से उन बच्चों का परिचय।

आपको शायद लगे कि इस तरह से पढ़ना सिखाना तो एक बहुत ही क्लिष्ट प्रक्रिया होगी। कदापि नहीं, इस सत्य के साथ कि 'पढ़ना' सिखाने की कोई एक अचूक विधि नहीं हो सकती और न ही पढ़ना सिखाने के लिए एक अकेली विधि पर ही निर्भर रहा जा सकता है। हर विधि की अपनी सीमाएं होती है, जिन्हें शिक्षक बख़ूबी पहचान सकते हैं। इससे पहले कि पठन कौशल विकसित करने की विधियों पर चर्चा की जाए, एक अहम सवाल पर बात करना ज़रूरी होगा कि बच्चे पढ़ना क्यों नहीं सीख पा रहे हैं? इस सवाल के उत्तर के रूप में अपने कुछ अनुभव बयां करना ज़रूरी है–

- अन्य विषयों की तरह भाषा की घंटी भी 'रटने' की ही घंटी है, और किसी लिखे हुए को रटकर पढ़ना नहीं सीखा जा सकता।
- कक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा बोलने और सवाल करने को एक 'नकारात्मक मूल्य' के रूप में देखा जाता है। कक्षाओं के वातावरण में विद्यार्थियों की 'मुक्त अभिव्यक्ति' के लिए बहुत ही कम गुंजाइश रखी गई है जो सापेक्ष रूप से उनकी पठन प्रक्रिया के आड़े आती है।
- भाषा के बुनियादी कौशल– बोलना और सुनना दोनों को ही दरकिनार कर अक्षरों और वर्णमाला को रटवाए जाने की

अंतहीन क़वायदें बच्चों में मौजूद 'पढ़ना' सीखने की ललक का शुरू में ही क़त्ल कर देती है।

- पाठ्यपुस्तकों में पठन कौशल को लेकर कोई सुसंगत नीति नहीं होती।

- पाठ्यपुस्तकों की भाषा, बच्चे की अपनी भाषा और अनुभवों में गहरा अंतर होता है।

- अध्यापक बच्चों की उच्चारण संबंधी ग़लतियों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि बच्चे का पढ़ने के प्रति किसी तरह का उत्साह बन ही नहीं पाता।

- सुविधावंचित समूह के बच्चे विशेषकर प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी अपने आप को विद्यालय की किसी भी घटना और प्रक्रिया से नहीं जोड़ पाते, चाहे वह पाठ्यपुस्तक में छपी सामग्री हो या फिर शिक्षण विधियां, अथवा अध्यापकों का व्यवहार। कहीं भी वे स्वयं को ढूंढ़ नहीं पाते। पाठक शायद सवाल करें कि इन सबसे 'पढ़ना सीखने' का क्या लेना–देना! थोड़ा नहीं, बहुत लेना–देना है। दरअसल अपनी सांस्कृतिक–सामाजिक पहचान खोकर किसी भी प्रक्रिया से जुड़ पाना बहुत ही कठिन है और फिर पढ़ा क्या जाए? क्या वह जिसमें न तो 'हम' हैं और न ही 'हमारे अनुभव'? इस सवाल का उत्तर ढूंढ़ने की प्रक्रिया के दौरान ही आप समझ लेंगे कि उक्त बिन्दु का 'पढ़ने' से कोई सरोकार है या नहीं।

- हमारे विद्यार्थी पढ़ना इसलिए भी नहीं सीख पाते, क्योंकि विद्यालय और घर दोनों ही जगहों पर पढ़ने योग्य रोचक सामग्री उन्हें मिल ही नहीं पाती। जिन बच्चों को मनचाही पठन सामग्री मिल भी जाती है, उन्हें पढ़ने की आज़ादी नहीं है क्योंकि पाठ्यपुस्तक के इतर सामग्री पढ़ने से परीक्षा में अच्छे अंक न ला पाने का भय अभिभावकों को हमेशा घेरे रहता है। मेरे स्मृति कोष में ऐसे बहुत से दृश्य टंके हुए हैं, सिर्फ़ इस वज़ह से कि ''इन्हें पढ़कर क्या ख़ाक नंबर ला पाओगे?''

बच्चों को सही मायनों में पढ़ना सिखाने के लिए सबसे पहले तो ज़रूरी है कि मेरे इन अनुभवों पर ग़ौर किया जाए। शायद फिर नए से नए तरीक़े खुद–ब–खुद सामने आ जाएं। दूसरी ज़रूरी बात कि अध्यापक इस बात की अहमियत समझें कि पढ़ने का अर्थ मात्र शब्दों तथा अक्षरों की पहचान से नहीं है बल्कि उनमें से अर्थ ढूंढ़ने से है और अर्थ हिज्जे करके शब्द पढ़ने से नहीं आते बल्कि लिखे हुए में अपने अनुभव और अनुमान जोड़ने से आते हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात 'पढ़ने' का मतलब सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकों के पाठों को पढ़ पाना नहीं बल्कि अपने चारों ओर बिखरी अथाह लिखित और मुद्रित सामग्री को पढ़ पाना और उसमें से अपने लिए कुछ निकाल पाना असल मायनों में 'पढ़ना' है भाषा के उच्चस्तरीय कौशल तो 'पढ़ने' की परिभाषा को कहीं और दूर ले जाते हैं। उनके अनुसार पढ़ने के प्रति सदैव एक ललक लिए रहना, साहित्य का रसास्वादन करना, अपने सामाजिक परिवेश को समझकर उसके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करना ही 'पढ़ना' है। क्या हम निशि, मनोज, भानु, जामुनी आदि को इन उच्चस्तरीय कौशलों तक ले जा पाएंगे? निश्चित रूप से, बशर्ते 'सही मायनों में पढ़ना क्या है?' को हम समझ पाएं और तदनुसार भाषा के सत्र में कक्षा की विविधता के अनुसार वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग को स्थान दे पाएं।

साभार : पढ़ने की दहलीज़ पर, संपादक लता पांडे, प्रकाशक– एनसीईआरटी।

बोलना सीखना

जेम्स ब्रिटन

बच्चा घर में बोलना सीखता है

घर ही वह स्थान है जहां लोग वार्तालाप करना सीखते हैं। वे केवल शिशु के विषय में ही नहीं वरन् अन्य अनेक विषयों पर भी बातचीत करते हैं। उन्हें यह पता होता है कि शिशु कोई उत्तर नहीं देगा फिर भी वे शिशु से बातचीत करते हैं। इसके अलावा शिशु के कानों में पड़ोसियों को किए गए अभिवादन, आगंतुकों से की गई बातचीत भी पड़ती है। वह इनमें से अधिकांश पर ध्यान नहीं देता। इसके बावजूद यह आश्चर्यजनक है कि वह अपने जीवन के इस प्रारम्भिक चरण में भी कुछ अंतर करना सीख जाता है। वह आनेवाले शोर में से कुछ को पसन्द करने लगता है। अध्ययनों से पता चला है कि एक माह के शिशु के सामने मां न भी हो तो उसकी आवाज़ सांत्वना देनेवाली होती है। यह उस स्थिति के लिए ही सच होता है जब वह पैं–पैं कर रहा होता है न कि तब जब उसने आसमान सिर पर उठा रखा हो। उसकी चारों ओर पाउडर के डिब्बे पर अंकित शब्दों से लेकर होर्डिंग पर लिखे शब्दों तक, अख़बार के समाचारों के शीर्षक से लेकर शिशु की देखभाल से संबंधित किताबों के शीर्षक तक भाषा के अन्य रूप भी होते हैं। इसी प्रकार उसके परिवेश में जो कुछ होता है उसका ध्वन्यात्मक या कोई अन्य रूप (वर्बल काउंटरपार्ट) होता है।

यह थोड़ा सा आश्चर्यजनक है कि (इतना अधिक सुनने के बाद भी) जब वह पहली बार उच्चारण करता है तो वह टिप्पणी के रूप में करता है न कि आदेशात्मक रूप में। जैसा होता है, जो कुछ घटता है वह उसका मौखिक विवरण देना प्रारम्भ कर देता है। भूख लगना अथवा प्यास लगना या ऊबना या कुरसी के नीचे फंस जाने या किसी काम की चीज़ तक पहुंचना, ये ऐसे ही काम हो सकते हैं। इन सभी कार्यों को करने के लिए आदेश या निवेदन ही समुचित मौखिक व्यवहार है।

बालक की आरम्भिक भाषा में टिप्पणी उसके मौखिक व्यवहार का बहुत अहम हिस्सा होती है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि किसी बच्चे के बोलना सीखने (उच्चारण अधिगम) में मुख्य प्रेरणा अपनी मूलभूत या भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होती है। यही उसके भाषा के तीव्र गति से सीखने का मूल कारण भी है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहकर हम अनेक तत्त्वों पर ध्यान नहीं दे रहे। बोलने से पहले ही बालक अन्य व्यक्तियों के क्रियात्मक शब्दों के प्रति अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करने लगता है। जैसे राधे–राधे, ताली बजाओ ताली, मम् मम्, आजा–आजा आदि। या इसी प्रकार के अन्य बोलने का बहाना करने की ख़ुशी अनुतान पद्धति या उसी तरह की नक़ल करने में आनेवाला आनंद। या इसी प्रकार बाद में जब वह बोलने लगता है तो बोलने की प्रक्रिया का आनंद अधिक प्रकट होता है न कि भाषा को टूल (उपकरण) के रूप में प्रयोग करने का। जब वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बोलना प्रारम्भ कर देता है तो उसके कुछ समय बाद ही वह चिल्लाकर अथवा खीसें निपोरकर या किसी की ओर अथवा उससे दूर दौड़कर या इसी तरह का कोई काम करके वह अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करता है। तथ्य यह है कि जब उसके भाषिक व्यवहार का नाटकीय अंदाज़ एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच जाता है कि वह इस सार्वभौमिक सत्य को समझने लगता है (और इसी के आधार पर क्रियाकलाप करने लगता है) कि प्रत्येक वस्तु का नाम होता है। यह अनुभव को शब्दों में व्यक्त करने का संगत सत्य है न कि उसे पाना जो आप मांगते हैं।

भाषा का देखने से लेना–देना

हेलेन केलर शैशवकाल में ही देखने और सुनने की क्षमता खो बैठी थी। उसे उंगलियों से वर्तनी सिखाने के,

भाषा के माध्यम से अपनी इच्छाएं प्रकट करना सिखाने के सभी तरीक़े व्यर्थ चले गए थे। एक दिन केलर को भाषा के एक अन्य प्रयोग का बोध हुआ, वह उसकी एक अन्य आवश्यकता पूरी कर सकती थी। यहां जो कुछ घटा उसका विवरण दिया जा रहा है :

वह (उसकी अध्यापिका) मेरे लिए हैट लेकर आई। मुझे मालूम था कि मैं धूप सेंकने जा रही हूं। बिना शब्दों के अनुभव करना संभव है तो इस आधार पर इसे विचार कहा जा सकता है। मेरा मन ख़ुशी से कुलाचें भरने लगा। हम लोग मधुमालती की ख़ुशबू से आकर्षित होकर कुएं की ओर जानेवाले रास्ते पर गए। यह रास्ता मधुमालती की लताओं से भरा था। कोई पानी खींच रहा था। मेरी अध्यापिका ने मेरा हाथ धारा में कर दिया। जैसे ही मेरे हाथ पर ठंडे पानी की धारा पड़ी, मेरी अध्यापिका ने दूसरे हाथ पर वाटर (पानी) लिख दिया, पहले धीरे–धीरे, फिर तेज़ गति से। मैं मूर्तिवत् खड़ी थी। मेरा पूरा का पूरा ध्यान उनकी अंगुली की गति पर केन्द्रित था। अचानक मेरी चेतना में कुछ भूला हुआ उभरा।. ... और इस तरह भाषा के रहस्य से मेरा परिचय हुआ। तब मुझे पता चला कि डब्ल्यू–ए–टी–ई–आर का अर्थ है वह ठंडी–ठंडी आश्चर्यजनक वस्तु जो मेरे हाथों पर बह रही है। उस जीवित शब्द ने मेरी आत्मा को जगा दिया, उसे प्रकाश से, आशा से, ख़ुशी से भर दिया, स्वतन्त्र कर दिया। यह सच है कि बाधाएं अभी भी समाप्त नहीं हुई थीं। पर ये बाधाएं ऐसी थीं जो समय के साथ–साथ दूर हो सकती थीं।

मैंने कुआं तो पीछे छोड़ दिया, पर अब मैं सीखने की जिज्ञासा से भरी हुई थी। प्रत्येक वस्तु का नाम था और प्रत्येक नाम एक नए विचार को जन्म देता है। जब हम वापस लौटे तो मैं जिस भी वस्तु को छूती वही मुझे जीवन से कंपायमान प्रतीत हो रही थी। ऐसा इसलिए हो रहा था कि मैं सभी वस्तुओं को उस नई आश्चर्यजनक दृष्टि से देख रही थी जो मुझे मिल गई थी।

'प्रत्येक वस्तु का नाम होता है' यह खोज का निरूपण करती है कि 'वास्तव में भाषा क्या होती है।' हेलेन केलर के लिए तो स्पष्टतः पानी पीने के लिए इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना कि सोचने के लिए।

यह सभी स्वीकार करते हैं कि जब बच्चा सीखता है तो वह एक बहुत बड़ा कार्य करता है। वह यह कार्य इतने कम समय में कर लेता है, यह तथ्य भी व्याख्याओं को चुनौती देता है। हम अपने विषय में यह कल्पना करें कि हम किसी सुदूर द्वीप पर हैं। हम ऐसे लोगों के बीच रह रहे हैं जिनकी न तो भाषा जानते हैं, न तो उनकी वर्णमाला पढ़ सकते हैं। कुछ समय बीतने पर और ऐसे कार्यकलाप करके जिनमें क्रिया और भाषा एक साथ काम करती हैं हम उस भाषा की मौखिक वाचिक धारा को अर्थाधारित टुकड़ों में तोड़ सकते हैं। यह भी तभी संभव होगा जब न केवल हम चिर जिज्ञासु और धैर्यवान हों बल्कि हमारे आसपास के लोग भी परम धैर्यवान और सद्भावनापूर्ण हों। ध्वनियों की ये विभिन्नतारहित (अनडिफ्रेंससिएटिड) अंतहीन धाराएं मातृभाषा सीख रहे शिशु की दो समस्याओं में से सिर्फ़ एक का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। उसके सामने तो समान प्रकार के अनुभव भी होते हैं। यह कुछ ऐसा है जिसकी हम समुचित ढंग से कल्पना नहीं कर सकते। कारण है यदि एक बार हम अपने अनुभवों को विश्व की वस्तुओं के रूप में संगठित कर लेते हैं तो कभी भी उस प्रक्रिया को उलटा नहीं कर सकते।

जब बालक अपने लिए बोलना (स्वभाषा का प्रयोग करना) सीख जाता है तब जो कुछ भी लोग कहते हैं उसका खेल–खेल में किया गया अर्थहीन अनुकरण निश्चित तौर पर उसकी उच्चारण क्षमता को सुधारता है। हालांकि मुझे इसमें शक है कि जब माता–पिता इस प्रक्रिया से उसे नई ध्वनियां 'सिखाते' हैं तब वह नई ध्वनियां सीखता है। अंग्रेज़ मनोवैज्ञानिक वैलेंटीन का विवरण यह बताता है कि बच्चे का यह खेलना इतना निरर्थक न हो यदि उसे अपने आप खेलने दिया जाए। हमारे छेड़ने से वह अधिक निरर्थक हो जाता है। यह टिप्पणी उसकी 21 महीने की बेटी के बारे में है :

(हम उससे) 'कॉफी' कहलवाने की कोशिश कर रहे थे। उसने अनेक बार 'फोफी' कहा। तीसरी बार तो वह ग़ुस्सा भी हो गई। फिर अगली बार मेरे 'नहीं! कॉफी' कहने पर वह अचानक ज़ोर से चिल्लाई–'टी!'

मैं अपनी टिप्पणी के समर्थन में, एक ऐसी लड़की का उदाहरण देना चाहता हूं जिसे प्रारम्भिक 'एल' ध्वनि बोलने

में कठिनाई होती थी। उन्नीस महीने की उम्र में वह युक और यवली गर्ल कह लेती थी। तेईस महीने की उम्र में वह लुक लवली और लक्की गर्ल तो बोल ही लेती थी पर 'यैस' के स्थान पर लैस और 'आईज और ईअर्स' के स्थान पर लाइज और लीयर्स का प्रयोग और 'यान' के स्थान पर लान आदि बोलती थी। इसके केवल दो महीनों में ही वह दोनों ध्वनियों का उनके उचित स्थान का प्रयोग करने लगी।

बोलना शुरू करने पर बच्चे के मुख से जो एक शब्द उच्चारण होकर निकलते हैं वे ज़्यादातर एक शब्दीय वाक्य होते हैं। इनका जिन स्थितियों में प्रयोग किया जाता है उनके श्रोताओं को ऐसे 'वाक्यों' के अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती। ये वाक्य हैं – गोन (चला गया), फिनिश्ड (समाप्त हो गया), मैन (आदमी), शू (जूता), अप (खड़े हो जाइए), मोर (और चाहिए) आदि। वे उत्तर प्रायः पूरे वाक्यों से देते हैं 'येस, मम्मी'ज गोन शॉपिंग (मम्मी, खरीदारी करने गई हैं), 'यू हैव फिनिश्ड, हैव यू?' (क्या आपने काम ख़त्म कर लिया, क्या आपने?)

बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं?

'बच्चे नक़ल (अनुकरण) करके भाषा 'सीखते हैं' इस वक्तव्य का क्या अभिप्राय है? ऐसा प्रतीत होगा कि वे लोगों के वस्तुओं के विषय में 'कहने के तरीक़े' का अनुकरण करते हैं– इसके अधिक समीप ठहरती है न कि उनके द्वारा कही गई बातों का। यह बच्चों के व्याकरणिक रूपों के प्रयोग में सबसे अधिक मुखर होता है। ऐसा लगता है कि वे जो कुछ भी सुनते हैं उसके आधार पर अपनी एक व्यवस्था बनाते हैं और बोलते समय इसका ही प्रयोग करते हैं। इसके परिणामस्वरूप ही वे ऐसे वाक्य बोल देते हैं जो उन्होंने पहले नहीं सुने।

पिआजे को अनुकरण के प्रारम्भिक रूपों के लिए जो सत्य प्रतीत हुआ था वही सामान्यतः भाषिक आशु सुधार के लिए भी सत्य ठहरता है। कोई भी नया अनुभव पूर्व गृहीत व्यवहार अभिरचनाओं (पैटर्न्स) अर्थात् पहले से सीखी हुई रचनाओं में परिवर्तन करता है। बच्चे को बातचीत (इंटरएक्शन) से ही नई वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में कार्यरत मनोविज्ञानी रोजर ब्राउन और उर्सुला बेल्युगी ने बच्चों के उच्चारों (मौखिक अभिव्यक्तियों) की व्याकरणिक विशेषताओं का विशेष अध्ययन किया है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि केवल ऐसा नहीं है कि बच्चे ही युवाओं का अनुकरण करते हैं अपितु युवा भी बच्चों से बातचीत करते समय उनके भाषा रूपों का अनुकरण करते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएं परस्पर संगुंफित होती हैं। उन्होंने अठारह महीने की लड़की और सत्ताईस महीने के लड़के की अपनी–अपनी मां के साथ बातचीत अनेक बार ध्वन्यांकित की। (ब्राउन एंड बेल्युगी, 1964)

नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं इनमें बच्चे ने मां का अनुकरण किया है :

मां	बच्चा
पिताजी की अटैची	पिता अटैची
फ्रेजर को दुख होगा	फ्रेजर दुखी
वह बाहर जा रहा है	वह बाहर जा रहा
यह पेप्पर जैसा कुत्ता नहीं है	कुत्ता पेप्पर
नहीं तुम श्री कोमर के जूते पर नहीं लिख सकते	क्रोमर जूता लिखना

अब यह स्पष्ट हो गया है कि उन्होंने बच्चे के अनुकरण को संक्षिप्तीकरण (रिडक्शन) क्यों कहा। ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक निश्चित लंबाई के शब्दों का ही प्रयोग कर सकता है। यह लंबाई ऐसी है जिसमें मां की छोटी अभिव्यक्तियां (अट्रांसेज) तो समा जाती हैं पर वह लंबी अभिव्यक्ति को छोटा कर लेता है। उनका निष्कर्ष है कि इस अवस्था में बच्चे की आत्मस्फूर्त (स्पोंटेनियस) अभिव्यक्तियों कमोबेश एक समान लंबाई की ही होती हैं। वे कहते हैं कि इस लंबाई की सीमा बच्चे की भाषा में नियोजन या कार्यकलाप करने की क्षमता पर निर्भर होती है। उन्होंने संक्षिप्तीकरण में छोड़े जानेवाले और बचे रहनेवाले शब्दों के प्रकार के विषय में भी टिप्पणी की है। उनके अनुसार जो शब्द शेष रहते हैं वे टेलीग्राम के शब्दों के समान होते हैं जिनमें अधिकांश सूचना होती है। ये संज्ञा, क्रिया और विशेषण होते हैं। मोटे तौर पर कहें तो ये बोलचाल में अधिक महत्त्वपूर्ण प्रत्यक्ष अपेक्षी वर्ग (ओपन क्लास) के होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि बच्चा कैसे इनका उपयोग करता है। जो शब्द

छोड़े जाते हैं वे प्रकार्यपरक (फंक्शन) शब्द या व्याकरणिक चिह्न होते हैं। ये शब्द स्वयं सूचनात्मक नहीं होते वरन् सूचनात्मक शब्दों में परस्पर संबंध स्थापित करते हैं। वाक्य में इन पर बल कम होता है। (कभी–कभी शब्द के स्थान पर शब्द का हिस्सा व्याकरणिक चिह्न प्रत्यय मात्र ही छोड़ दिया जाता है।)

जब कोई मां अपने बच्चे की अभिव्यक्ति का अनुकरण करती है तो वह संक्षिप्तीकरण न करके विस्तार करती है। वह उसे अभिव्यक्ति का वह रूप देती है जो उसके अनुसार बच्चा कहना चाहता था। यह अकसर बच्चे की इच्छा को नियन्त्रित करने का एक तरीक़ा होता है जिसमें प्रायः युवा व्यक्ति की सही ढंग से अभिव्यक्ति करने की इच्छा का कमोबेश समावेश रहता है। लेखकों का विश्वास है कि स्थिति चाहे कैसी भी हो यह प्रक्रिया अपने आपमें बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके महत्त्वपूर्ण होने का कारण है इसमें बच्चे के सामने विशेष तौर पर गढ़े हुए आदर्श वाक्य रखे जाते हैं। ध्वन्यांकन में से कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

बच्चा
मां विस्तार
शिशु ऊंची कुर्सी
शिशु ऊंची कुर्सी पर बैठा है
ईव खाना
ईव खाना खा रहा है
मां सैंडविच
मां एक सैंडविच लेगी
दीवार बैठा
वह दीवार पर बैठा है
पापा फेंको
इसे पापा की तरफ फेंको

मां की अभिव्यक्ति प्रायः बच्चे की अभिव्यक्ति का इस रूप में अनुकरण है कि वह जो भी कहती है उसका आधार बच्चे की अभिव्यक्ति है। यह अनुकरण पूर्ण अनुकरण नहीं है क्योंकि मां ने प्रायः छोटे–छोटे और सरल वाक्यों का प्रयोग किया है। उसने परम्परागत बोलचाल की शैली का अनुकरण नहीं किया है। यह अनुकरण उस बच्चे की भाषा की दृष्टि से कुछ बड़े बच्चे की भाषा का अनुकरण है। यदि आपने कभी किसी बच्चे से बात की होगी तो आपको यह भी अनुभव हुआ होगा कि आप स्वतः इसी प्रकार का व्यवहार करने लगते हैं। मुझे यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है कि मां अपनी अभिव्यक्ति में उन्हीं शब्दों को जोड़ती है जिन्हें बच्चे ने संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में छोड़ दिया होता है।

फिर भी किसी तरह (ब्राउन और बेल्युगी उद्धृत) प्रत्येक बच्चा उस भाषा को जिसके परिवेश में वह बड़ा होता, विश्लेषित करता है और उसकी आंतरिक, गुप्त (लेटेंट) संरचना निकाल लेता है। यह गुप्त संरचना इतनी सामान्य होती है कि वह बच्चा आजीवन इसका प्रयोग करता रहता है। यह आर्थी और वाक्यीय दोनों प्रकार की होती है। भाषा अधिगम में गुप्त संरचना की खोज सबसे महत्त्वपूर्ण और अबोधगम्य प्रक्रिया है।

बच्चा जिस तंत्र का उपयोग करता है उसकी व्याख्या करना, उसका विवरण देना, उसका व्याकरण लिखना होगा। जैसा कि हम सब जानते ही हैं, वह युवाओं को भी परेशान करनेवाली प्रक्रिया है। हम जिस प्रक्रिया की चर्चा कर रहे हैं उसके परिणामस्वरूप बच्चा यह तो जान जाता है कि 'शब्दों के साथ कैसे खेला जाए, खिलवाड़ किया जाए' पर यह (हम सब भी प्रायः यह नहीं जानते) वही जानता है 'वह क्या कर रहा है?'

जब वह लोगों को बातचीत करते सुनता है तो वह जो कुछ सुनता है निश्चित तौर पर उससे कुछ अधिक ग्रहण करता है। वह अभिव्यक्तियों (अट्रांसिज) के सामान्य रूपों को ऐसे रूप में ग्रहण करता है कि क्या किस शब्द के पहले और क्या बाद में क्या आता है अर्थात् शब्द कोटियों की परस्पर व्यवस्था। अंततः कोटियों की क्रमबद्धीकरण के अलावा और कोई कसौटी नहीं होती। ये रूप भी ब्राउन और बेल्युगी की आंतरिक संरचनाएं हैं। लेखकद्वय के अनुसार बच्चे इनके अनुरूप ही स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्तियां करते हैं। इनके विभिन्न विकल्पों का प्रयोग करके वे अपने इनसे संबंधित ज्ञान का विस्तार भी करते हैं। यह संभव है कि बोलने और सुनने में उतना अंतर न हो जितना प्रत्यक्षतः दिखाई देता है। भाषा कैसे कार्य करती है, इस विषय पर कार्य करनेवाले एक अन्य अमरीकी मनोविज्ञानी जार्ज मिलर ने एक बार कहा था' – 'इस संभावना की तर्क के रूप में प्रस्तुति अभी प्रमाणरहित है। जब हम किसी की बात सुनते हैं अथवा पुस्तक पढ़ते हैं तो हम पढ़–सुनकर उन वाक्यों का विन्यास समझने में सक्षम होते हैं क्योंकि हम उस समय

संभावित वैकल्पिक संरचनाएं बनाते हैं और उनका उपलब्ध संरचनाओं से मिलान करते हैं।'

एक अन्य प्रमाण के अनुसार ब्राउन और बेल्युगी ने संक्षेपीकरण अर्थात् युवाओं की अभिव्यक्तियों का तुरंत अनुकरण किसी व्याकरणिक प्रक्रिया का कारक नहीं है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की सूसन इर्विन अपने इस निरीक्षण से प्रमाणित हैं कि बच्चे ऐसे वाक्य बनाते हैं जिनकी एक सुनिश्चित अभिरचना (रेग्यूलर पैटर्न) होता है। यह अभिरचना युवाओं की भाषा से भिन्न होती है। इसलिए यह सोचना उचित ही है कि बच्चे की भाषा का अपरिपक्वता की किसी भी स्थिति का एक सुनिश्चित व्याकरण होता है। उनका कहना है कि बच्चा क्रमिक व्याकरणों का प्रयोग करता है, निरन्तर परिवर्तनशील व्याकरणिक व्यवस्थाओं का जो उसे अंततः युवाओं की भाषा के व्याकरण तक ले जाती है। वह मानती हैं कि युवाओं की भाषा के सुनने (और समझने से) के परिणामस्वरूप ही उसकी भाषा में अधिकांशतः उससे सन्निकटता पैदा होती है। बच्चे में व्याकरणिक तंत्रों का पूर्ववर्ती अस्तित्व उसमें सृजनात्मकता और समरूपता के आधार पर कार्य सम्पन्न करने की दृष्टि प्रकट करता है। उनके कुछ प्रयोगों का सार इस प्रकार है :

विकास की अभिरचना और समय के किसी सुनिश्चित बिन्दु पर प्रयोगों का विवरण देनेवाले नियम, विभिन्न बच्चों के लिए अलग–अलग और विभिन्न वाक्य प्रकारों में भी अलग–अलग थे। इस सबके बावजूद नियम थे और ग़लतियां भी यादृच्छिक, बेतरतीब (रैंडम) नहीं थी।

इन सभी मामलों में हमने देखा कि बच्चे भाषिक व्यवस्था का निर्माण करते प्रतीत होते हैं।..... यह विश्वास करना कठिन है कि चार बरस का होने तक बच्चा अति जटिल और मौलिक वाक्य गढ़ने लगता है। ये वाक्य हमें सुनने को मिलते हैं। हो सकता है ये वाक्य समरूपता का विस्तार हों न कि वर्ग और नियमों का सक्रिय प्रयोग।

इस अनुच्छेद में जिन तीनों लेखकों का संदर्भ दिया गया है, उन्होंने जो विवरण दिया है उसे हम 'बालक की दो शब्दों की अभिव्यक्तियों का व्याकरण' कह सकते हैं।

एक अन्य अमरीकी लेखिका ने भी इसी तरह का कार्य किया है। उनका कहना है कि उनके अपने ढाई वर्षीय बेटे के एकालापों (मोनोलौग्स) में तीन प्रकार की अभिव्यक्तियां ऐसी हैं जो सामान्य अंग्रेज़ी व्याकरण का अंग नहीं हैं। ये व्याकरण की मध्यवर्ती स्थितियों की द्योतक हैं। सबसे पहले प्रकार को उन्होंने 'सृजित' (ब्लिड–अप्स) नाम दिया है।

उदाहरणार्थ :

गधा

गधे को ठीक करो।

अथवा :

गुटका

पीला गुटका

सभी पीले गुटकों को देखो।

दूसरे प्रकार को उन्होंने विपरीत दिशा में कार्य करने वाले 'संक्षेपीकरण' (ब्रेक–डाउन्स) कहा है :

एंथनी ने फिर छलांग लगाई।

एंथनी छलांग

तीसरी प्रकार 'पूर्तियां' (कंप्लीशंस) हैं। ये वे वाक्य होते हैं जो दो या अधिक चरणों में यथारूप प्रस्तुत कर दिए जाते हैं। इनमें (सृजित के समान) पूरे की पुनरावृत्ति नहीं होती :

उन अन्नानासों को देखिए

एक सुंदर पेटी में

और :

बोबो जाती है

बाथरूम में

साफ करो

डा. वीयर ने इन मध्यवर्ती अनुक्रमों (ट्रांजीशनल सीक्वेंसिज) की चर्चा इस प्रकार की है :

पहली ही बार में वाक्य पूरा बना देने पर बच्चे की भाषिक क्षमता पर अक्सर अधिक ज़ोर पड़ता है। अभिप्रेत (इंटेंडिड) वाक्य के पूर्व या पश्चात् किए गए वाक् प्रयासों से भी यही प्रतीत होता है। कभी–कभी अकारण दिए गए विराम भी पदबंधों को अलग करते हैं जो वाक्यवत् कहे जाते हैं।....

ये तीनों मामले हमें क्रमशः सृजन (बिल्ड–अप्स), संक्षिप्तीकरण (ब्रेक–डाउन्स) और पूर्तियां (कंप्लीशंस) देते हैं।

किसी बच्चे की अभिव्यक्तियों के व्याकरण का विश्लेषण करना अनेक तरह की आकर्षक संभावनाएं जगाता है। अभी इन पर अधिक विचार नहीं किया गया है।

एक बच्चा जिस तरह अपने अनुभवों

को जिस रूप में ग्रहण करता है वह उसकी मां के तरीक़े से भिन्न होता है। ये दोनों तरीक़े उन अवसरों पर संयोग से आते हैं जिनकी हम चर्चा करने जा रहे हैं। यह स्थिति सहभागितापरक होती है। इस पर ही दोनों की भाषा केंद्रित भी होती है। मां के प्रयोगात्मक विस्तार शिशु के स्थिति ग्रहण करने की प्रक्रिया को समझने के प्रयास हैं। ये विस्तार बच्चे की अभिव्यक्तियों के समान होते हैं क्योंकि वह भी प्रायोगिक तौर पर वाक्य बनाता है फिर पुनः कोशिश भी करता है।

एक सामान्य से वार्तालाप में हमारी रुचि विषय और सहभागी दोनों में होती है। इन अवसरों पर यह प्रश्न कि 'वह कैसा (किस जैसा है) है?' अपने आप उठता है। इस प्रश्न का रूप कुछ इस प्रकार का होता है – 'वह वस्तुओं का क्या करता है? वह विश्व को किस रूप में देखता (ग्रहण करता) है?' (कुछ अवसरों पर यह प्रश्न विषय की तरफ़ झुकाव लिए होता है – 'वह इसे सीधा क्यों नहीं देख सकता?') अर्थात् जिस रूप में मैं देख रहा हूं, परन्तु ऐसा नहीं होता कि यह पूर्णतः ही भिन्न हो।) मां और बच्चे का संबंध सीधा–सीधा विपरीतात्मक नहीं होता। बच्चे के लिए कठिन प्रश्न बनाया जा सकता है। 'यहां, इस क्षण यह मेरे लिए कैसा है?' हालांकि यह सब करना बच्चे के लिए संभव नहीं है : 'मेरे लिए, यहां, इस क्षण' संभवतः उसके लिए एक पूर्णता है। यह एक ऐसी पूर्णता है जिसमें इसके अपने लिए और मां के अपने लिए और इस समय और परिवेश में कोई भिन्नता नहीं है। जैसा कि पिआजे ने मत व्यक्त किया है : 'उसका अहम (ईगो) उसके लोगों और वस्तुओं के चित्र के साथ मिल गया।' इस प्रकार, उसके लिए ये सभी प्रश्न कि 'वह विश्व कैसा बनाती है?', 'विश्व कैसा है?' और 'मैं कैसी हूं?' एक ही बन जाते हैं।

स्पष्टतः (यह मेरी धारणा है) यह मां पर निर्भर करता है। यदि इस प्रकार की स्थितियों में उसे 'हम के रूप में किए अनुभव' के आधार पर उस विश्व का निर्माण करना है जिसमें हम रहते हैं तो उसे उसके अनुभव निर्माण के तरीक़े को अपने प्रयासों से सफल बनाना होगा। यह सत्य है कि बच्चों को निराशा भी झेलनी पड़ती है। ('उसने सीखा ही होगा' यह ऐसा कथन है जिसे नकारा नहीं जा सकता। परन्तु किसी विशिष्ट स्थिति में इसका प्रयोग हमारी बालक की स्थिति के अनुरूप विश्व पुनर्निर्माण की प्रवृत्ति की प्रशंसा करने की क्षमता पर निर्भर होगा।)

तीन साल का बच्चा

अधिकांश बच्चों में तीन वर्ष की आयु में जो कुछ भी होता है वह उनके भाषिक विकास में मील का पत्थर होता है। उनकी शब्दों को प्रयोग करने और समझने की क्षमताएं उस (वर्तमान) स्थिति में उपलब्ध संकेतों पर कम से कम निर्भर होती जाती है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि अब वस्तुओं का स्थान स्वयं शब्द ले लेते हैं। शायद हम इस परिवर्तन की महत्ता का आकलन इस पर विचार करके कर सकते हैं कि इस उपलब्धि के अभाव में वह क्या–क्या करने में असमर्थ था। वह अपनी बातचीत में किसी अन्य अवधि और अन्य स्थानों की चर्चा नहीं कर सकता था। वह किसी पहले अवसर पर किए कार्य का विवरण देने में असमर्थ था। न ही वह यह बता सकता था कि वह क्या करने जा रहा है। वह सिर्फ़ आसपास के समय की तथा यहां और अब से सीधे संबंधित वस्तुओं की ही बात कर सकता था। (उदाहरणार्थ : 'इसे मेरे खाने के बाद के लिए वहीं रख दो।') इस बिन्दु पर स्पष्ट होना अत्यधिक कठिन है। स्वभावतः बच्चा अनेक परिचित वस्तुओं से खेलता है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि उसके इनसे जुड़े भूतकाल के अनुभव वर्तमान क्रियाकलाप के अंग बन जाते हैं। ऐसा करते हुए उसकी बातचीत में भी ये अनुभव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं। इस प्रारम्भिक अवस्था में इन अनुभवों की अवस्थिति से ही वह अपने भूतकालिक अनुभवों को ज़िंदा रख पाता है।' परवर्ती स्थिति में वह इनके अभाव में भी अपने मस्तिष्क में ला सकेगा, वार्तालाप में प्रयोग कर सकेगा अथवा उन्हें अभिव्यक्त कर सकेगा।

इस परिवर्तन से उसके क्रियाकलाप को मिलनेवाली भाषिक सहायता बहुत अधिक सशक्त हो जाती है। जैसा शुद्ध और सामान्य रूप से आंखों देखे विवरण में होता है। वह इसके साथ क्रिया करने के स्थान पर क्रिया का पूर्वानुमान लगा सकता है। आंखों देखा विवरण एक योजना बन जाता है। व्यगोत्स्की के अनुसंधान को आगे बढ़ानेवाली रूसी मनोवैज्ञानिक लूरिया ने भाषा के इस पक्ष का विशिष्ट

अध्ययन किया है। उन्होंने दिखाया है कि एक बार बच्चा निकट वर्तमान की सीमाओं का पार कर लेता है तब आंखों देखे विवरण से दो प्रकार से भूतकाल को याद करनेवाली 'वर्णनात्मक भाषा' (नैरेटिव स्पीच) और क्रिया का पूर्वानुमान करनेवाली नियोजनात्मक भाषा (प्लानिंग स्पीच) का जन्म होता है। शब्दों में योजना बनाने का प्रभाव यह होता है कि बच्चे के परिवेश में उपलब्ध अन्य संकेतों से होनेवाले भटकाव को रोकने की क्षमता विशेष तौर पर बढ़ जाती है। वह योजना को सुगमता से पूरा कर लेता है। भाषिकीकरण में वास्तव में एक सुव्यवस्थितीकरण का प्रकार्य होता है।

जब लूरिया यह वर्णन करती है कि उसने पांच साल के एक जैसे दिखनेवाले जुड़वां भाइयों के साथ क्या किया था तो वह वर्णन भाषा के व्यवहार को सुव्यवस्थित करनेवाले रूप का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। जब वह उनसे मिली तो उनकी भाषा अविकसित थी। इसका आंशिक कारण उनका जुड़वां होना था।

जुड़वां होने के कारण उन्हें आपस में बातचीत करने के लिए किसी विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं थी। इसके अन्य आंशिक कारण सामाजिक और मनोवैज्ञानिक थे। उनका अनुमान था कि वे सामान्य भाषिक विकास से दो वर्ष पीछे थे। इतना ही वे सामान्य व्यवहार के अन्य पक्षों में भी इसी प्रकार पिछड़े हुए थे।

(उसके अनुसार) उनके खेल का विषय बहुत ही प्रारम्भिक तथा एक ही प्रकार का होता था। यह उन्हें खेल सामग्री में उपलब्ध वस्तुओं का अन्य पक्षों से स्वतन्त्र रूप में प्रयोग करने को प्रेरित करता था। वे घनों को या तो एक के ऊपर एक लगा देते अथवा एक पंक्ति में ज़मीन पर रख देते थे। भवन निर्माण की सामग्री के साथ साधारण सरंचनाएं बनाने की प्रवृत्ति एक बार भी नहीं दिखाई दी। उन्हें भवन बनाने की बड़ी–बड़ी सामग्री तो पसंद थी पर इनसे उनका खेल उन्हें एक कोने से दूसरे कोने तक ढोने तक ही सीमित था। उन्होंने कभी भी इनसे भवन बनाने की कोशिश नहीं की। सृजनात्मक अथवा सार्थक खेल असंभव था। खेल अत्यधिक नीरस थे और बिना किसी परिवर्तन के दोहराए जाते थे। लोट्टो जैसे खेल उनको क्षणभर के लिए भी आकर्षित नहीं करते थे।

जुड़वां भाई (किंडरगार्टन) शायद ही किसी अन्य बच्चे के साथ खेले हों। वे यदा–कदा ही पकड़म–पकड़ाई या रेलगाड़ी जैसे खेल खेलते थे जो सामान्य गतिविधिवाले हलके फुलके दौड़ भाग के खेल थे। इन खेलों में न तो भूमिकाएं ही स्पष्ट होती हैं और न ही अनेक तत्त्वों का एक काल्पनिक समंजन ही होता है। वे कभी भी जटिल सार्थक खेल नहीं खेले थे और न ही उन्होंने कभी मूर्ति बनाने अथवा चित्रकला आदि जैसी सृजनात्मक गतिविधियों में ही हिस्सा लिया था। अनेक महीनों के बाद उन्होंने अपनी चित्रकारी की। उन्होंने रंग के कुछ तैलीय चिह्न बनाए थे जो उनकी आयु से मेल नहीं खाते थे।

उन जुड़वां बच्चों ने उनकी उम्र के सामान्य स्तर तक लाने में 10 महीने लग गए। इस दौरान उनका व्यवहार भी तीन साल के बच्चे से छह साल के बच्चे में बदल गया :

ये सारे सुधार बहुत ही कम समय में हो गए। हालांकि इस दौरान स्वाभाविक 'विकास–प्रक्रिया' की भूमिका महत्त्वहीन थी। पर इसकी पहचान भाषिक विकास की 'लम्बी छलांग' नामक एक नये तत्त्व से की जा सकती है। यह हमें दोनों जुड़वां बच्चों की सृजनात्मक क्रियाशीलता में सुधार को भाषिक व्यवस्था अधिगम से जोड़ने की अनुमति देता है जो बच्चे के मानसिक जीवन को संगठनात्मक क्षमताओं से भर देती है।

जुड़वां बच्चों का यह प्रयोगात्मक उपचार बहुत प्रभावी था। यह उन्हें किंडरगार्टन के उस उचित वर्ग में रखने की बात थी जिसमें वे लूरिया के अनुसार थे। इन दोनों में से एक को एक अतिरिक्त प्रयोग के रूप में वैयक्तिक तौर पर 'वार्तालाप शिक्षण' और भाषिक अभ्यास करवाए गए। इससे उसका विकास तेज़ गति से होने के साथ–साथ ज़्यादा भी हो गया।' दस महीने बाद उन दोनों में पहले के अंतर की तुलना में बहुत कम अंतर थे।

घटित को याद करना अर्थात् 'वर्णनात्मक भाषा' (नैरेटिव स्पीच) वह होती है जो आंखों देखे विवरण के समान किसी क्रियाकलाप से जुड़ी नहीं होती। आंखों देखा विवरण एक प्रकार का वर्णन होता है। पर इसके कुछ अंशों को क्रियाकलाप से स्थापित किया जा सकता है।

भूतकालिक घटना याद करते समय जो कुछ भी संगत होता है, उसे शब्द में व्यक्त कर दिया जाता है। बातचीत में वर्तमान से संबद्ध बीती हुई घटनाओं का संदर्भ देने के लिए यदा कदा वर्णनात्मक भाषा का पहली बार प्रयोग किया जाता है। लगभग ऐसा ही कुछ अपनी रेलगाड़ी से खेलते हुए स्टीफन और उसकी मां के मध्य हुए वार्तालाप में हुआ है :

वह गाड़ी पर – पर – पर चलता जा रहा है। आप समझे ना! वह गाड़ी से आगे निकलने जा रहा है? और अब हम ब्रेक लगाएंगे, आप समझे ना? हम ब्रेक लगाएंगे। हमारे पास डीजल की रेलगाड़ियां हैं, क्या नहीं हैं हमारे पास? मैं उससे खेलता हूं, फिर भी उस रेल से जोनाथन खेला फिर मैं उन दो गाड़ियों से खेला। और जब डैडी काम पर जाने को तैयार थे, वह पंच और जूडी खेला।

(क्या वह ?)

हां, वह ... फिर इस तरह गिर गए। अरे, वह इस पर जाना चाहता है, क्या आपको दिख रहा है? और अब उसके पास एक (... ?) है। वह मेरे एक काले इंजन जैसा है, क्या ऐसा नहीं है? अब वह इंजन रेल से लगने जा रहा है, आप समझे ना,...वहां– मैं अपनी गोद–आपकी गोद से अपने आप उठ गया, क्या मैं नहीं उठा? आपने मुझे नहीं उठाया, क्या आपने उठाया ? नहीं–

(अब आप बड़े हो गए हैं।)

मैं अपना पैर वहां नीचे रखता हूं – इस तरह वह रास्ते से नहीं हटेंगे – क्या ऐसा होगा? जब मैं छोटा बच्चा था तो मैं ऐसा ही अपने आप (...?) –पिताजी की तरह – मम– मैं करता था।

(आप क्या करते थे ?)

एक छोटा बच्चा – कुछ साल पहले मैं छोटा बच्चा था, क्या मैं नहीं था?

(मम। क्या बहुत पुरानी बात है ?)

हां, ऐसा ही है –ऐसा ही है...

(कितनी पुरानी ?)

छह बजे मैं छोटा सा बच्चा था – हां – अब मैं पिताजी की तरह बड़ा हो गया हूं, क्या मैं नहीं हूं? और अब मैं पिताजी की तरह बड़ा हो गया हूं, मैं हमेशा आग जलाता हूं– जानता हूं इसे कैसे बुझाते हैं..... '

कोई भी वाचाल बच्चा इस उम्र में अपने निकट भूत की कहानियां किसी भी ऐसे व्यक्ति को सुनाएगा जो उन्हें सुनने को तैयार होगा। यह उसके व्यवहार का सबसे अधिक समाजीकरण करनेवाला रूप है। 'मैं मां के साथ खरीदारी करने गया था। हम मांस की दुकान पर गए। मैंने उन्हें बताया कि आपकी कार कहां है।..... मेरे पिताजी घुड़सवारी करने गए और वहां चोट लग गई।' (नेविले– उम्र दो वर्ष तीन माह) जब इस चटर–चटर को सुनते हैं तो उन दैनंदिन अभिव्यक्तियों को आशु अनुवाद (व्याख्या) कहकर इनकी अवमानना करना, महत्त्व न देना बहुत आसान है। घटनाओं के प्रवाह में क्रमात्मक वर्णन बनने से पहले अनेक परिवर्तन किए जाते हैं। चाहे यह कोई साधारण सी ही घटना क्यों न हो। कुछ बच्चे स्कूल जाने पर ही वर्णनात्मक भाषा सीखते हैं। कारण स्कूल जाने और आने के बीच की ज़िन्दगी घर के जीवन की अपेक्षा अनेक साहसपूर्ण कार्यों से भरी होती है। बच्चे के स्कूल के अनुभव वास्तव में परिवार के सदस्यों के रुचिपूर्ण, जिज्ञासारहित और सहायक के रूप में सूचित अनुक्रियाओं पर निर्भर हो सकते हैं। वह अपने स्कूली संसार का उनकी सहायता से घर के संसार में निर्माण करता है।

भाषा क्या है?

छोटे बच्चों की भाषा का यह विवरण यह बताए बिना पूरा नहीं हो सकता कि भाषा शोर है। जब किसी ने उससे पूछा कि शब्द क्या होता है तो उसने उत्तर दिया 'शब्द आवाज़ होते हैं'। इस उत्तर से उसका अभिप्राय भी यही था, इसमें कोई शक नहीं है। भाषा में एक पदार्थ होता है। किसी पढ़ना और लिखना न जाननेवाले के लिए वह पदार्थ ध्वनि होता है। इससे भी अधिक, बच्चे जैसा अन्य पदार्थों के साथ करते हैं वैसा ही इसके साथ भी करते हैं। वे इससे खेलते हुए ही इसके प्रति अपनी अनुक्रिया व्यक्त करते हैं। यह एक छोटे बच्चे की कहानी है जो हाल में नाचता हुआ, 'पंचम सुर में! पंचम सुर में!' गाता हुआ जाता है। इसे अपने पिता की किसी मनोवैज्ञानिक संगोष्ठी के साथ लेना था। उनकी (बच्चों की) अधिकांश बातचीत में शब्दों की ध्वनियों की ख़ुशी प्रकट होती है। यह शब्द जैसे शोर के रूप में उनकी बातचीत में आसानी से छलकने लगता है।

प्रयोगों से पता चलता है कि शब्द

बच्चों के लिए मुख्य रूप से भौमिक उद्दीपन होते हैं। धीरे–धीरे उनका उपकरणात्मक अर्थ प्रभावी होता है। बच्चे शब्दों को चुनने के लिए स्वतन्त्र भी नहीं होते। लूरिया ने खोजा कि तीन साल से कम के बच्चे समध्वनीय शब्दों को एक साथ जोड़कर वर्ग बनाते हैं (जैसे ड्रम और ड्रामा), पर तीन साल से अधिक आयु के बच्चे समान अर्थवाले शब्दों (जैसे ड्रम और ल्यूट) आदि को जोड़कर उनका वर्ग बनाते हैं। उनकी ध्वनियों के प्रति अनुक्रिया इस प्रभाव के परिवर्तन के साथ नहीं बदलती। यदि हम चाहते हैं तो हम पंचम सुर (कैपेसिटी) की ध्वनियों के आसपास ही मंडराते रह सकते हैं पर वास्तविकता तो यह है कि पांच वर्षीय बच्चा चुनने का कार्य अधिक सुगमतापूर्वक कर सकता है। एकालाप के कुछ प्रकारों की विशिष्टता होती है – शब्दों और ध्वनियों के साथ खिलवाड़ (प्ले विद वर्ड्स)। जब हमने एकालाप पर आंखों देखे विवरण के रूप में विचार किया था तो हमने देखा था कि यह बच्चे की उसकी क्रियाकलापों में सहायता करने का कार्य सिद्ध करती है। जब कोई बच्चा अपनी जिज्ञासा किसी बड़े व्यक्ति के सामने प्रकट करता है तो उस पर बड़ा भार भी पड़ सकता है। जब वह बिना कोई क्रियाकलाप किए सिर्फ़ अपने आपसे उस समय बात करता है, जब उसे नींद आ रही हो तो भाषा के साथ क्रीड़ा प्रमुख हो जाती है और उसे शब्दों के प्रयोग में आनंद आने लगता है। यह देखा गया है कि बच्चे सोने से पहले विस्तार से अपने आपसे बातचीत करते हैं। इसके संबंध में कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं था। सबसे पहले इस विषय पर 1962 में अमरीकी रूथ वीयर का अध्ययन 'लैंग्वेज इन द क्रिब' छपकर सामने आया। इसमें उसने अपने ढाई वर्षीय बेटे एंथनी के निद्रापूर्ण एकालापों का संकलन और विश्लेषण किया है।

डा. वीयर इस बात पर बल देती है कि 'ब्लैंकेट' (कंबल), 'मोम' (पोचे) और 'ग्लास' (शीशे) से संबंधित ध्वनियों का प्रयोग है। ये ड्रम और ड्रामावाले उदाहरण में वर्णित सिद्धान्त के आधार पर एक दूसरे के पास लाई गई हैं। उनका निष्कर्ष है कि 'हालांकि इस अनुच्छेद का मुख्य प्रकार्य अभिरचना अभ्यास (पैटर्न प्रेक्टिस) है। इसमें ध्वन्यात्मक क्रीड़ा प्रतिस्थापित रूप वर्ग (फ़ार्म क्लास) के अंतर्गत इकाइयों का चयन कर उनके परिवर्तन से संबंधित है।'

एंथनी अपने प्रयासों पर यदा–कदा टिप्पणी करके 'अभ्यास' के विचार का पुनर्बलन करता है :

एक दो तीन चार

एक दो

एक दो तीन चार

एक दो तीन

एंथनी गिने गिनती

तुमको नमस्कार

एक दो तीन

एक अवसर पर तो वह स्वयं अपने उच्चारण को सुधारता भी है

बेर

बैर नहीं

बैर

बैर

बैर नहीं

बेर

डा. वीयर निष्कर्ष रूप से कहती हैं : 'जिससे खेला जाता है वह ध्वनि होती है। यह क्रीड़ा रूपावलीपरक (पैराडिग्मैटिक) और विन्यासक्रमात्मक (सिंटैग्मैटिक) अभ्यासों के सांचे (फ्रेमवर्क) में की जाती है।' हालांकि क्रीड़ा और अभ्यास के अंतर को ग्रहण करना, समझना मेरे लिए सुगम नहीं है। संप्रेषणात्मक, जिज्ञासापरक अथवा नियन्त्रणात्मक उद्देश्य के अभाव में भी ध्वनियां मुक्त रूप से उचित सांचों में जुड़ी होती हैं। अतः मुझे प्रतीत होता है कि ये संरचनाएं वाक्यात्मक (सिंटेक्टिकल) रूप होते हैं। हम किसी भी अवस्था में क्रीड़ा और थोपे हुए अभ्यास में स्पष्ट रूप से अंतर कर सकते हैं। बड़े लोगों के संदर्भ में हम सुगमता से क्रीड़ा और स्वआरोपित अथवा स्वैच्छिक अभ्यास में अंतर कर सकते हैं। जब तीन साल के बच्चे पर यह अंतर लागू करते हैं मुझे लगता है इसका कोई अर्थ नहीं है।

करेन के पास एक नायलोन का खरगोश था। वह इसे एक स्कार्फ में लपेटकर अपने बिस्तर में ले गई। इसमें वह आपको एक नए अपरिचित बिस्तर में आरामदायक स्थिति में लाने की कोशिश कर रही है : '

अपने आरामदायक और कोमल बिस्तर में

आरामदायक और कोमल बिस्तर में

मैं हूं अब बन्नी खरगोश जैसी

लिपटी हुई अब बन्नी खरगोश जैसे

मुझे लग रहा है कोमल बन्नी खरगोश

की तरह

हां बन्नी खरगोश की तरह

पंखों के समान कोमल है बन्नी।

कुत्ते भी होते हैं कोमल और मेमने भी कोमल

मुझे चीज़ें पसंद हैं कोमल–कोमल
क्या आपको भी?

हां मुझे पसंद हैं चीज़ें कोमल–कोमल।

करेन के एकालापों में भी प्रतिस्थापन अभ्यास दृष्टिगत होते हैं। ये तब ज़्यादा होते हैं जब वह अपनी मां की अनुपस्थिति की चिन्ता नहीं करती :

मैं हो जाती हूं बीमार हर रोज़ कार में

इसीलिए हो गया, मुझे जुकाम

पर मैं नहीं होऊंगी बीमार इस तरह

पर मैं नहीं होऊंगी बीमार बिस्तर में

पर मैं नहीं होऊंगी बीमार सागर तट पर

बच्चा जब भी अपने माता–पिता के सामने किसी शब्द का उच्चारण करता है तो वह यह प्रकट करता है कि वह कौन है। उसका बोलना शुरू करने से पहले से वे उसकी गतिविधियों से ही उसके विषय में जान लेते थे। इस प्रकार जब वह बोलता है तो कुछ अधिक प्रकट करने में समर्थ होता है। वह जो कुछ भी कहता है उससे वह यह प्रकट करता है कि उसका विश्व कैसा है। उनकी प्रत्येक व्याख्या उनके सामने पुनर्व्याख्या के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार बादवाली स्थिति में जो कुछ भी बनकर सामने आता है, वह सामान्यतः सिर्फ़ उस शिशु का विश्व नहीं होता हालांकि यह प्रक्रिया द्विदिकीय (यह तो स्पष्ट है कि दोनों समानुपाती नहीं हैं) है और जानबूझकर जिज्ञासा पैदा करनेवाली हो सकती है। उदाहरणार्थ –दो साल आठ महीने की क्लेयर अपने पिता से पूछताछ कर रही है :

क्लेयर : आपके पिताजी क्या करते थे ?

पिता : वह एक कार्यालय में काम करते थे?

क्लेयर : क्या वह अब भी जीवित हैं, क्या जीवित हैं?

पिता : तुम्हें किसने बताया ?

क्लेयर : मुझे ऐसे ही पता चला। अच्छा, क्या वह अब भी हैं, क्या हैं?

पिता : नहीं, मेरी बच्ची।

क्लेयर : आपके पिताजी ने क्या किया ?

पिता : उनकी मृत्यु हो गई है।

क्लेयर : क्यों?

पिता : क्योंकि वह बूढ़े हो गए थे।

क्लेयर : जब आप छोटे थे तो क्या वे बूढ़े नहीं थे?

पिता : हां! मेरी बच्ची !

क्लेयर : आपके साथ खेलने के लिए कोई छोटी बहन–भाई क्यों नहीं था?

पिता : हैं...

क्लेयर : तो वह क्या करते हैं ? कौन हैं वह ?

पिता : तुम उन्हें जानती हो – तुम जानती हो चाचाजी...?

क्लेयर : पर उनकी मृत्यु क्यों हुई? उनकी मृत्यु के समय आप कितने साल के थे?

पिता : पैंतीस।

क्लेयर : आप आदमी क्यों थे? ऐसा तब भी हो सकता था जब आप पंद्रह साल के थे। आप बड़े लड़के रहे होंगे, क्या आप नहीं थे ? जब उनकी मृत्यु हुई

आप बड़े लड़के क्यों नहीं थे ?'

इससे स्पष्ट है कि यदि माता–पिता सुन सकें तो बातचीत करने के विषयों से बच्चा भरा होता है। वे उस समय कुछ भी नहीं कर सकते हैं। संभवतः ऐसे कार्य किसी और समय पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है।

प्रत्येक बच्चा जिस विश्व में पैदा होता है उसे खोजना प्रारम्भ करता है। यह जिज्ञासा 'जन्मजात' होती है। भाषा इसका मुख्य उपकरण बनती है। (ए.एन. व्हाइटहैड ने बहुत पहले ही संकेत किया था – वस्तुओं को नाम देने में दिलचस्पी लेना और कुछ नहीं बल्कि खोज प्रक्रिया को जारी रखना है।) शिशु के लिए उसका पूरा परिवार ही रंगमंडल होता है। इसमें उसे माता–पिता से पूरी तरह सहयोग करना, घरेलू क्रियाकलापों में सहयोग देना शामिल है। इनमें उसे 'विकास की आधारभूत संतुष्टि' होती है। भाषा ही वह माध्यम है जिससे उसे संतुष्टि लाभ होता है। जब हम इसे प्रारम्भिक वर्षों में देखते हैं और सुनते हैं तो अधिगम, विकास, जीवन जीना तीनों ही किसी एक ही प्रक्रिया के वैकल्पिक नाम प्रतीत होते हैं। इसके कुछ अपवाद होने के बावजूद यह एक आश्चर्यजनक सीमा तक सुनी जा सकनेवाली प्रक्रिया है।

बच्चा बातचीत (टाक) से ही बातचीत करना सीखता है। इसलिए अधिगम में उसकी सहायता करने का सबसे अच्छा तरीक़ा उसकी खोजों और पारिवारिक कार्यकलापों में उसको प्रोत्साहित करने का एक तरीक़ा उसके लिए ज्ञान के नए क्षेत्र खोजना है। यह कार्य उसके लिए कहानी की पुस्तकें तथा सामान्य पुस्तकें पढ़कर किया जा सकता है। इसके लिए तब तक इंतज़ार करना ज़रूरी नहीं होता जबकि वह स्वयं पढ़ सके। दूसरा तरीक़ा पारिवारिक गतिविधियों को इस तरह से बदलने में होता है कि वे इसमें कुछ योगदान कर सकें।

छानबीन (एक्सप्लोरिंग) और प्रतिभागिता परस्पर एक दूसरे पर निर्भर होती है। यह लम्बे समय तक संभव नहीं होता कि छानबीन के लिए घर ही पर्याप्त रहे, न ही परिवार ही सामाजिक परिवेश के रूप में इसके लिए पर्याप्त होता है। इसके बाद नए क्षेत्रों की खोज करने का साहस और अन्य लोगों से संबंध स्थापित करने का साहस उसके अपने घर के आधार की संरक्षकता (सीक्यूरिटी) पर निर्भर करता है।

जब हम हज़ारों में से किसी सामान्य परिवार की चर्चा करते हैं तो क्या 'विश्वास दिलाने की क्रीड़ा' और 'आंखों देखा हाल', 'लंबा भाषण' (स्पीच) और 'निद्रापूर्व एकालाप', 'पारिवारिक क्रियाकलाप' – ये सभी सुगमतापूर्वक उपलब्ध होते हैं। जिन परिवारों में माता–पिता दोनों कार्यरत होते हैं, पूरा दिन कार्य करते हैं, जल्दी–जल्दी समय पर खाना खाते हैं, बातचीत के लिए समय ही नहीं होता –ऐसे परिवार में पारिवारिक चर्चा कुछ इस प्रकार की होती है कि युवाओं को भी परस्पर संप्रेषण या बातचीत के लिए भी बहुत कम समय मिलता है।

अमरीकन मनोविज्ञानी सैमुअल किर्क ने कुछ समय पूर्व अभाव में रह रहे बच्चों की भाषा क्षमता का एक सर्वेक्षण किया था। एक अनाथालय में रहनेवाले डेढ़ से दो साल के चौबीस बच्चों के दो वर्ग बनाए गए। इनका 'बौद्धिक मानदंड' (मेजर्ड इंटेलीजेंस) के आधार पर जितना भी संभव था मिलान किया गया। यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरा कि दोनों वर्गों की क्षमता सामान्य से कम थी। पहले वर्ग के सभी बारह बच्चों को पागलख़ाने (मेंटल होम) में रहनेवाली नव वयस्क कन्या की देखभाल में भेजा गया और दूसरे वर्ग के बच्चों को अनाथालय में ही छोड़ दिया गया। दो साल में लड़की के साथ रहनेवाले वर्ग के बच्चों के बौद्धिक मानदंड में आश्चर्यजनक परिवर्तन (20 बिन्दुओं से अधिक) हो गया। अनाथालय में रहनेवाले बच्चों में इसके विपरीत हुआ।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तो यह था कि प्रयोगकर्ता इक्कीस वर्ष बाद भी उन बच्चों को ढूंढ़ने में सफल रहा। उसने पाया कि जिस वर्ग की देखभाल बचपन में उस लड़की ने की थी उसके सदस्यों की औसत उपलब्धि बारहवें स्तर (सामान्यतः सत्रहवें–अठारहवें वर्ष के लिए उपयुक्त) की थी जबकि दूसरे वर्ग का औसत चौथे स्तर (सामान्यतः नौ–दस वर्ष के लिए उपयुक्त) की थी। सैमुअल किर्क के अनुसार न्यूयार्क के ग़रीब नीग्रो ज़िलों के विद्यालय में जानेवाले छात्रों में से केवल कुछ छात्रों की क्षमता अन्य छात्रों की अपेक्षा बहुत उच्च स्तर की थी। जब इसकी खोजबीन की गई तो पता चला कि इन सभी बच्चों की दादी परिवार में साथ रहती थीं।

यह दादियों को परिवार में साथ रखने के पक्ष में कोई दलील नहीं है (न ही शिशुओं को कम दिमाग़वाली लड़कियों के संसर्ग में विकसित करने के पक्ष में)। यह इस तथ्य के समर्थन में एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है कि बचपन में किसी बड़े व्यक्ति के साथ बातचीत करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उस व्यक्ति के बुद्धिमान होने या न होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। इस सर्वेक्षण के साक्ष्यों से यह भी सिद्ध हुआ कि 'समय' का भी अपना महत्त्व है। बातचीत के वातावरण की सर्वाधिक आवश्यकता दो वर्ष की आयु में होती है और पांच वर्ष की आयु के बाद आवश्यकता तेजी से कम होने लगती है।

'भाषा और अगिधम' से साभार। प्रकाशक – ग्रंथ शिल्पी। लेखक– जेम्स ब्रिटन, अनुवाद प्रमोद कुमार शर्मा। इस लेख को संपादित कर प्रस्तुत किया गया है। विस्तृत अध्ययन उक्त पुस्तक में किया जा सकता है।

भेजे में भाषा का उपकरण? मामला संगीन है

ए.के. जयसीलन

विद्या भवन में 15–16 अप्रैल 2004 को ज्ञान का निर्माण विषय पर सेमीनार का आयोजन किया गया था। इस सेमीनार में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अवधारणाएं कैसे बनती हैं, भाषा में कैसे अंकित होती हैं, भाषा किस तरह हमारी अवधारणाओं को संरचना देती है, जैसे मुद्दों पर समझ साझा करने के प्रयास किए गए। इसी संदर्भ में सेमीनार में भेजे में भाषा के उपकरण के बारे में गहराई से पड़ताल करता यह पर्चा।

मैं करूंगा यह कि सबसे पहले भाषा की प्रकृति के बारे में चंद बुनियादी दावों का एक खाका खींचूंगा जिन्हें चौम्स्की शुरुआती बिंदु मानते हैं। आपमें से कुछ लोगों को इनके बारे में कुछ पता होगा। सबसे पुराने विचारों में से एक यह है जिसे वे आज भी दोहराना नहीं भूलते मनुष्यों के पास भाषा नामक कोई चीज़, जो प्रजाति-विशिष्ट लगती है, कैसे है, इसे समझने की शुरुआत हम तभी कर सकते हैं जब हम भाषा के अर्जन और भ्रूण में भुजाओं के विकास जैसी कुछ शारीरिक घटनाओं के बीच सादृश्य स्थापित कर सकें। आप जानते हैं कि मां की कोख में बच्चे के विकास में एक अवस्था आती है जब उसमें कुछ उभार बनते हैं जो आगे चलकर भुजाएं बन जाते हैं। उसमें कुछ मांसल रचनाएं उभरती हैं, जो हृदय, फेफड़े वग़ैरह बनती हैं। ये सब जैविक घटनाएं हैं और चौम्स्कीयाना भाषा वैज्ञानिकों का दावा है कि भाषा अर्जित करना एक जैविक घटना है और जन्म के समय मनुष्य की संतान में इसके परिपथ

तैयार होते हैं; मस्तिष्क पहले से ही भाषा अर्जित करने के लिए तैयार होता है। मस्तिष्क में भाषा के विकास के लिए न्यूनतम शर्त एक चिंगारीनुमा उद्दीपन है - आपको किसी उद्दीपन की चिंगारी की ज़रूरत होती है। उदाहरण के लिए, यदि मनुष्य का बच्चा, जो भाषा की क्षमता के साथ पैदा हुआ है, की परवरिश भाषा से किसी भी तरह के संपर्क से अलग-थलग की जाए तो हो सकता है कि यह संकाय कभी विकसित न हो और शायद आगे चलकर यह बच्चा कभी भी भाषा अर्जित न कर सके। मगर यदि परिस्थिति ऐसी है जहां बच्चे के पास भाषा के कच्चे माल का इनपुट है, तो बच्चा भाषा अर्जित कर लेता है और भाषा का यह अर्जन पूरी मानव प्रजाति में लगभग एकरूप होता है, इसका बुद्धि जैसी किसी चीज़ से कोई लेना-देना नहीं होता। इसलिए हम कहते हैं कि यह एक जैविक घटना है। जिस तरह से इन्सान का कोई भी बच्चा, बशर्ते कि वह जिनेटिक विकृति से ग्रस्त न हो, हाथ-पैरों और हृदय और ऐसी सब चीज़ों के साथ पैदा होता है, उसी तरह न्यूनतम चिंगारीनुमा उद्दीपन मिलने पर सारे मनुष्य भाषा अर्जित कर लेते हैं। भाषा का यह अर्जन एक बार शुरू हो जाने के बाद एक स्व-निर्देशित व आंतरिक रूप से निगरानीशुदा प्रक्रिया है। बाहर से हम ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते, पालक या शिक्षक इस प्रक्रिया में मदद या रुकावट पैदा नहीं कर सकते। और आपमें से कई लोगों को यह बात पहले से पता होगी। भाषा अर्जन का यह नज़रिया तथाकथित नैसर्गिकता परिकल्पना का मूल विचार है। तो यह पहला विचार है कि कैसे भाषा या एक मायने में भाषा हासिल करने की क्षमता के सूत्र तैयार होते हैं। मानव भाषा की जैविक बुनियाद का यह दावा चौम्स्की जैसे व्यक्ति के लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ क्योंकि यह स्वाभाविक रूप से एक अन्य दावे, एक सार्वभौमिक व्याकरण के दावे, के साथ फिट हो गया। वैसे सार्वभौमिक व्याकरण की धारणा की उत्पत्ति चौम्स्की से नहीं हुई थी। बल्कि दार्शनिक लोग लंबे समय से इस बात पर विचार कर रहे थे कि एक गहरे अमूर्त अर्थ में सारी मानव भाषाओं में एक-सा पैटर्न नज़र आता है।

चौम्स्की से पहले दार्शनिकों ने एक सार्वभौमिक व्याकरण की धारणा का विकास इस तरह की धारणाओं के आधार पर करने का प्रयास किया था कि भाषा में शब्दों का क्रम दिमाग़ में विचारों के क्रम का अनुगामी होता है। यदि यह सही है तो इसका स्वाभाविक मतलब होगा कि सभी इन्सान एक-सा सोचते हैं। लिहाज़ा भाषाओं की संरचना एक-सी होनी चाहिए। मगर कुछ दार्शनिकों द्वारा अख़्तियार किया गया यह रास्ता बहुत फलदायी नहीं रहा क्योंकि वे विचारों के क्रम की धारणा में ज़्यादा ठोस तथ्य नहीं जोड़ पाए। और चौम्स्की ने किया यह है कि इसे दार्शनिक अटकलबाज़ी से दूर ले गए और एक आनुभविक आधार प्रदान किया।

तो यह है दूसरा विचार। मैंने जो पहला विचार प्रस्तुत किया था वह नैसर्गिकता परिकल्पना का था। दूसरा विचार है सार्वभौमिक व्याकरण का यानी एक व्याकरण है जो सारी मानव भाषाओं के मूल में है। मुझे यक़ीन है कि आप इससे मतभेद ज़ाहिर करेंगे, हम इस पर फिर लौटेंगे। चौम्स्की पूर्ववर्ती दार्शनिक परंपरा से एक और मायने में, मानव मस्तिष्क की प्रकृति के अपने नज़रिए में भी अलग हटे थे। आप जानते ही हैं कि मस्तिष्क की प्रकृति में इन्सानों की रुचि हमेशा से रही है। दार्शनिक लोग युगों से इस सवाल पर बहस करते आ रहे हैं और फिर भी शायद यह कहना उचित ही होगा कि इस सवाल में गहरी दिलचस्पी के बावजूद दार्शनिकों ने मानव मस्तिष्क को समझने में कोई ख़ास तरक़्क़ी नहीं की क्योंकि दार्शनिकों का हठ था कि वे मस्तिष्क को एक इकाई यानी एक ही वस्तु के रूप में देखेंगे।

आप एक समांतर स्थिति की कल्पना भी कर सकते हैं। इसीलिए मानव मस्तिष्क को समझने की दिशा में आगे बढ़ना इतना कठिन है। यदि आप इसे एक इकाई के रूप में देखते हैं तो आप कह रहे हैं कि दिमाग़ में बुद्धि नामक कोई चीज़ है जिसे समझा नहीं गया, और चूंकि उसमें बुद्धि है, इसलिए वह वे तमाम चीज़ें कर लेता है जो हम मानते हैं कि दिमाग़ करता है, जैसे अनुभूति से प्राप्त सूचनाओं का प्रोसेसिंग, तार्किक चिंतन, याद रखना, भाषा का अर्जन और उपयोग, और विभिन्न अन्य बातें। ऐसा माना जाता है कि दिमाग़ ये सारी चीज़ें बुद्धि नामक किसी चीज़ की बदौलत करता है जिसे किसी ने आगे समझा नहीं है।

अब आप एक समांतर स्थिति की कल्पना कीजिए जिसमें एक समुदाय है जिसने कभी मानव शरीर की चीरफाड़ नहीं की है और कभी यह नहीं देखा है कि मानव शरीर अंगों से मिलकर बना है। चूंकि उस समुदाय ने जीवित होना नामक

गुण को भलीभांति समझा नहीं है, इसलिए वह मानव शरीर को एक अविभेदित पिण्ड के रूप में देखने पर अड़ा है, जो वे सारे काम करता है जो मानव शरीर को करने चाहिए, जैसे भोजन को पचाना, धड़कना, पसीना निकालना, और वे सारे काम जो मानव शरीर करता है। अब यह समुदाय, जिसने कभी मानव शरीर को चीरफाड़ करके देखा नहीं है और यह समझा नहीं है कि वह अंगों से मिलकर बना है, जिनके अपने-अपने कार्य हैं, हालांकि ये अंग एक-दूसरे से अंतर्क्रिया करते हैं और ये अंग ऐसे हैं कि प्रत्येक अंग अपनी विशिष्ट जैव रासायनिक क्रियाओं द्वारा संचालित होता है, वह समुदाय मानव शरीर को समझने की शुरुआत भी नहीं कर सकता। मानव मस्तिष्क को लेकर हम इसी स्थिति में थे। अब हम चौम्स्की द्वारा नए रास्ते पर उठाए गए क़दम से लैस हैं मगर इस मामले में भी वे इस विचार के जनक नहीं हैं। ऐसे कई समकालीन भेजा (brain) अध्ययन, भेजा अनुसंधान चल रहे थे जिनसे पता चल रहा था कि हमारे कई दिमाग़ी कार्य भेजे में स्थान विशेष से जुड़े हैं यानी स्थानबद्ध हैं; भेजे के कुछ ख़ास हिस्से हैं जहां दृष्टि का प्रोसेसिंग होता है, कुछ ख़ास हिस्से हैं जहां किसी और चीज़ का प्रोसेसिंग होता है वग़ैरह। तो इस तरह के अनुसंधान के नतीजे आ रहे थे और इसके परिणामस्वरूप और इसे आगे बढ़ाते हुए चौम्स्की ने दिमाग़ का मॉड्यूलर नज़रिया अपनाया। यह तीसरा विचार है जो मैं प्रस्तुत करना चाहता था। दिमाग़ का मॉड्यूलर नज़रिया जिसके मुताबिक मानव मस्तिष्क एक अविभेदित इकाई नहीं है बल्कि मॉड्यूल्स से मिलकर बना है। शरीर के अंगों के समान हर मॉड्यूल एक तरह से स्वतंत्र है मगर (अन्य मॉड्यूल्स के साथ) अंतर्क्रिया करता है।

तो ये तीन विचार हैं, नैसर्गिकता परिकल्पना, सार्वभौमिक व्याकरण का विचार, और तीसरा मस्तिष्क की मॉड्यूलर संरचना। ये तीन विचार एक-दूसरे से अंतर्क्रिया करते हुए एक सुसंगत समष्टि बनाते हैं। अब यदि मानव मस्तिष्क मॉड्यूल्स से बना है, तो चौम्स्की यह कह सकते हैं कि एक मॉड्यूल है जो भाषा के प्रति, भाषा के अर्जन के प्रति समर्पित है और यह इकाई, सार्वभौमिक व्याकरण नामक यह अमूर्त चीज़ कहां स्थित है? वे कहेंगे कि यह भाषा संकाय (faculty of language) में स्थित है जो मानव मस्तिष्क का एक मॉड्यूल है। तो वे सार्वभौमिक व्याकरण को भेजे के उस हिस्से के गुणधर्मों में, उसके परिपथों में स्थानबद्ध कर पाए जो भाषा को समर्पित है, जिसे भाषा संकाय कहते हैं। तो यह थी मानव भाषा की प्रकृति से सम्बंधित चोम्स्की के भाषा वैज्ञानिक विचारों की पृष्ठभूमि। अब मैं भाषा अर्जन के नज़रिए की बात पर आता हूं। यहां मैं ब्लैक बोर्ड का उपयोग करूंगा।

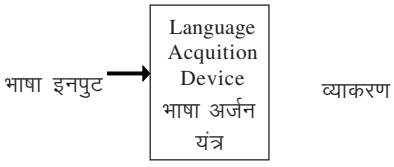

यह सरल सा रेखाचित्र है जो वास्तव में ख़ास कुछ नहीं कहता। बॉक्स का केंद्र LAD है जो Language Acquisition Device यानी भाषा अर्जन साधन का द्योतक है और दावा यह है कि बच्चा भाषा अर्जन साधन के साथ जन्म लेता है, जो भाषा संकाय के तुल्य माना जा सकता है। रेखाचित्र बताता है कि बच्चा भाषा अर्जन साधन के साथ पैदा होता है, परिवेश से भाषा के इनपुट्स प्राप्त करता है और परिणाम के रूप में आउटपुट एक व्याकरण होता है। मसलन, यदि बच्चे को इनपुट के रूप में चीनी भाषा दी जाए तो वह चीनी भाषा का व्याकरण विकसित कर लेगा; यदि हिंदी इनपुट मिले तो हिंदी व्याकरण सामने आएगा।

अब इस चित्र की रोचक बात यह है कि इसके तीन हिस्से हैं। भाषा जो कि इनपुट है; उसके बाद भाषा अर्जन साधन है; और फिर व्याकरण है जो दूसरे छोर पर बाहर निकलता है। और इस प्रक्रिया में प्रेक्षण योग्य हिस्से शुरुआती व अंतिम हिस्से हैं। जैसे आप इस बात का अध्ययन कर सकते हैं कि किसी बच्चे को किस तरह के भाषा इनपुट्स दिए गए। दरअसल, भाषा अर्जन अध्ययन की एक शाखा वह है जिसमें उस भाषा का अध्ययन किया जाता है जिसमें मां अपने बच्चे से बात करती है, जिसे मदरीज़ कहते हैं। तो आप इसका, इनपुटवाले हिस्से का अध्ययन कर सकते हैं, और आप दूसरे छोर से निकलनेवाले उत्पाद - व्याकरण - का भी अध्ययन कर सकते हैं। व्याकरण का अर्जन क्रमिक होता है, शुरू में बच्चा निहायत प्रारंभिक व्याकरण विकसित करता है जो धीरे-धीरे, ज़्यादा इनपुट्स मिलने के साथ, जटिल होता जाता है और अंततः प्रौढ़ व्याकरण हासिल कर लेता है।

आप देख ही सकते हैं कि प्रयुक्त भाषाविज्ञान (एप्लाइड लिंग्विस्टिक्स) के एक हिस्से में इन्सानी बच्चों के

विकासमान व्याकरण का अध्ययन किया जाता है। आप इनपुट सूचना का अध्ययन कर सकते हैं, आप दूसरे छोर से निकले व्याकरण का अध्ययन कर सकते हैं मगर हम यह नहीं देख सकते कि भाषा अर्जन साधन के अंदर क्या हो रहा है। भाषा अर्जन साधन एक ब्लैक बॉक्स ही है और चौम्स्कीयाना भाषा विज्ञानी यह पता करना अपना एक काम मानता है कि फलां-फलां सूचना प्रदान करने पर इस तरह का व्याकरण बाहर निकलता है तो भाषा अर्जन साधन के अंदर क्या हो रहा होगा। यह खुलासा करना भाषाविज्ञानियों का काम है कि भाषा अर्जन साधन के अंदर क्या होता है।

चौम्स्कीयाना दावा यह है कि भाषा अर्जन साधन एक मायने में सार्वभौमिक व्याकरण का साकार रूप है; इस मायने में कि भाषा अर्जन साधन के अंदर सार्वभौमिक व्याकरण के सारे तथाकथित सिद्धांत निहित हैं। बच्चा अपने दिमाग़ में भाषा अर्जन साधन के साथ जन्म लेता है जो एक मायने में शुरू से ही सार्वभौमिक व्याकरण के सारे सिद्धांत जानता है। मगर जब हम इस संदर्भ में जानना शब्द का उपयोग करते हैं - और यह बात ज्ञान का निर्माण विषय पर सम्मेलन में ख़ास तौर से मौजूं है - तो हम एक निश्चित क़िस्म के ज्ञान की बात कर रहे हैं जो भौतिकी या इतिहास या ऐसे ही किसी विषय के हमारे ज्ञान से अलहदा है। यह सहजवृत्ति (instinctive) ज्ञान है, जैसे परिंदों को घोंसला बनाने का ज्ञान होता है। यह सहजवृत्ति ज्ञान भाषा अर्जन साधन में उपस्थित होता है। चूंकि भाषा अर्जन साधन में यह सहजवृत्ति ज्ञान निहित रूप से स्थित होता है, इसे पता होता है कि मानव भाषा में कतिपय क़िस्म की संक्रियाएं तो जायज़ संक्रियाएं होंगी और इसके विपरीत कुछ क़िस्म की संक्रियाएं जायज़ नहीं होंगी। यह हममें पैदाइशी है, यह ज्ञान। इस मुक़ाम पर मैं आपको कुछ उदाहरण देना चाहूंगा।

चौम्स्की ने एक शुरुआती दावा यह किया था कि मानव भाषा का एक विशेष गुण यह है कि इसमें सारी वैयाकरणिक संक्रियाएं ढांचा-आश्रित हैं, इसका मतलब है कि इन संक्रियाओं को एक सोपानबद्ध ढांचे में स्थिति के आधार पर परिभाषित या व्यक्त किया जा सकता है न कि अन्य गुणधर्मों, उदाहरण के लिए, किसी रैखिक ृंखला में स्थिति के रूप में। तो आप ऐसी संक्रियाओं के बारे में सोच सकते हैं जो स्थिति और रैखिक ृंखला पर निर्भर हैं। जैसे आप व्याकरण का एक नियम सोच सकते हैं जो दर्पण प्रतिबिंबनुमा संक्रिया है। कोई दर्पण प्रतिबिंब संक्रिया कैसे चलती है? अर्थात यदि शब्दों की एक ृंखला क,ख,ग पर यह नियम लागू करके नतीजा ग,ख,क निकले, तो यह दर्पण प्रतिबिंब संक्रिया है। या आप व्याकरण के किसी ऐसे नियम की कल्पना कर सकते हैं जिसमें किसी ृंखला के सम व विषम स्थानवाले शब्दों की अदला-बदली की जाती है। यानी इसमें सम संख्यावाली स्थिति के हरेक शब्द की अदला-बदली विषम संख्या स्थितिवाले हर शब्द से की जाएगी। अब सिद्धांततः तो ये सभी संभव संक्रियाएं हैं, मगर मानव भाषा में ये संक्रियाएं कभी नहीं होतीं। हालांकि ये गणितीय संक्रियाएं निहायत आसान हैं और शायद अवधारणा के लिहाज़ से बहुत सरल होंगी मगर मानव भाषा में इनका उपयोग कभी दिखाई नहीं देता। मानव भाषा तो मात्र ढांचा-आश्रित नियमों, ढांचा-आश्रित संक्रियाओं का उपयोग करती है। इसके परिणाम क्या होते हैं? मैं दो-तीन वाक्य ब्लैक बोर्ड पर लिखता हूं।

1क) जॉन तैर सकता है। (John can swim.)

1ख) क्या जॉन तैर सकता है? (Can John swim?)

2क) लड़का तैर सकता है। (The boy can swim.)

2ख) लड़का है सकता तैर। (*Boy the can swim.)

कल्पना कीजिए कि अंग्रेज़ी सीख रहा मानव शिशु वाक्यों की पहली जोड़ी के संपर्क में आता हैः 'John can swim' और इसका प्रश्नवाचक जोड़ीदार 'Can John swim?'। सरसरी तौर पर देखने से नियम यह लगता है कि अंग्रेज़ी में प्रश्न बनाने के लिए दूसरा शब्द उठाकर पहले के स्थान पर रख दो, यानी पहले और दूसरे शब्दों की अदला-बदली कर दो। यह गणितीय क़िस्म की संक्रिया होगी। मगर मानव शिशु यह परिकल्पना कभी नहीं बनाता। दरअसल, इस तरह की जानकारी मिलने पर बच्चा कहीं अधिक जटिल परिकल्पना बनाता है - "मेरी भाषा में एक नियम है जिसमें प्रथम सहायक क्रिया को उठाकर उसे कर्ता संज्ञा पद के बाईं ओर रख देते हैं।" - जहां सहायक क्रिया, कर्ता संज्ञा पद वग़ैरह धारणाओं को स्थिति व ढांचे, सोपानबद्ध ढांचे और श्रेणियों के लिहाज़

से परिभाषित किया जाता है। ये निहायत पेचीदा धारणाएं हैं मगर फिर भी बच्चा वाक्य के पहले और दूसरे शब्दों की अदला-बदली के अत्यंत सरल नियम की बजाय जटिल नियम को चुनता है। नतीजतन जब बच्चे का संपर्क 'The boy can swim' जैसे वाक्य से होता है तो वह प्रश्न बनाते हुए 'Boy the can swim' जैसा वाक्य बनाने की ग़लती कभी नहीं करता। यह एक ऐसी ग़लती है जो कोई बच्चा, यहां तक कि दूसरी भाषा सीख रहा बच्चा, भी कभी नहीं करता। अर्थात कुछ ऐसी संक्रियाएं हैं जिन्हें शुरू से ही बाहर कर दिया जाता है क्योंकि हम जानते हैं कि मानव भाषा में किस तरह की संक्रियाएं हो सकती हैं और यह ज्ञान सहजवृत्ति ज्ञान है जो भाषा अर्जन साधन में अंतर्निर्मित है।

अब हम जानते हैं कि भाषा इनपुट से संपर्क होने पर मानव शिशु अपनी भाषा का व्याकरण जल्दी ही विकसित कर लेता है। यह बहुत तेज़ी से होता है। और भाषा का अर्जन काफ़ी तेज़ व आसान लगता है और यह बात सार्वभौमिक व्याकरण की प्रकृति तथा भाषा अर्जन साधन की प्रकृति की ओर संकेत करती है। इससे पता चलता है कि सार्वभौमिक व्याकरण तथा भाषा अर्जन साधन द्वारा अनुमतिशुदा संक्रियाएं बहुत थोड़ी सी और बहुत सीमित होनी चाहिए। यह निष्कर्ष कहां से निकला? मान लीजिए कि एक व्याकरण है जो दस क़िस्म की संक्रियाओं की इज़ाजत देता है और एक अन्य व्याकरण है जो मात्र तीन किस्म की संक्रियाओं की इज़ाजत देता है। मैं व्याकरण के नियमों की बात नहीं कर रहा हूं। मैं संक्रियाओं के प्रकारों की बात कर रहा हूं। अब जिस व्याकरण में दस किस्म की संक्रियाओं की इज़ाजत है, जब बच्चे को अपनी मां से सूचना इनपुट मिलता है, जिसका विश्लेषण करके उसे उसका ढांचा अर्जित करना है। ढांचे का यह समूचा अर्जन अंतर्निर्मित सिद्धांतों के अनुसार अचेतन मस्तिष्क द्वारा किया जाता है। अब दस संक्रियाओंवाले पहले व्याकरण में बच्चे को इस जानकारी का विश्लेषण दस अलग-अलग ढंग से करके उसमें से सही विकल्प चुनना होगा। जिस व्याकरण में मात्र तीन क़िस्म की संक्रियाएं हैं, उसमें बच्चे को इस जानकारी का विश्लेषण मात्र तीन तरह से करना होगा। अर्थात् किसी भी भाषा के व्याकरण में यदि बड़ी संख्या में संक्रियाओं की छूट है तो बच्चे का काम अपेक्षाकृत कठिन होगा जबकि एक ऐसी भाषा में बच्चे का काम अपेक्षाकृत आसान होगा, जिसके व्याकरण सिद्धांत में कम संक्रियाओं की अनुमति है। तथ्य यह है कि ऐसा लगता है कि दोनों बच्चों का काम आसान है। इससे पता चलता है कि सार्वभौमिक व्याकरण बहुत थोड़े क़िस्म की संक्रियाओं की अनुमति देता है। मैं समझता हूं बात स्पष्ट हो गई होगी।

भाषाविज्ञानियों के सामने अब क्या काम है? हम नहीं जानते कि सार्वभौमिक व्याकरण वाकई किस तरह की संक्रियाओं की अनुमति देता है। दरअसल हम नहीं जानते कि भाषा अर्जन साधन के अंदर होता क्या है और यह पता करना हमारा एक काम है। चौम्स्कीयाना भाषाविज्ञानियों का मत है कि भाषा सिद्धांत में जितनी कम संक्रियाओं की अनुमति होगी, व्याकरण उतना ही अच्छा होगा। 'आस्पेक्ट्स ऑफ दी थ्योरी ऑफ सिंटैक्स' (1965) में जब चौम्स्की कहते हैं कि दुर्बलतम सिद्धांत सर्वोत्तम सिद्धांत होता है तो उनका आशय यही है। दुर्बलतम सिद्धांत से उनका आशय ऐसे सिद्धांत से है जिसमें संक्रियाओं, अनुमतिशुदा संक्रियाओं, की संख्या सबसे कम हो। सशक्त सिद्धांत वह है जिसमें ज़्यादा क़िस्म की संक्रियाएं हों, दुर्बल सिद्धांत वह है जिसमें संक्रियाओं की संख्या कम हो। और हमारा लक्ष्य सदैव दुर्बलतम सिद्धांत होना चाहिए, शर्त यह है कि वह अनुभवों को अपने दायरे में समेट ले। अर्थात् उस सिद्धांत में मानव भाषा के सारी प्रेक्षित, वास्तविक जानकारी का विवरण होना चाहिए। मगर हमें यह काम यथासंभव कम से कम क़िस्म की संक्रियाओं के साथ करने की कोशिश करनी चाहिए।

अब आप जानते हैं कि पाणिनि के बाद और शायद पहले के व्याकरणविदों में भी व्याकरण में सरलता की एक धारणा मौजूद थी। हम अक्सर इस रूप में सोचते हैं कि एक व्याकरण की तुलना में दूसरे व्याकरण में कितने नियम हैं। यदि व्याकरण 'क' एक भाषाई परिघटना का वर्णन आठ नियमों की मदद से करे और व्याकरण 'ख' उसी परिघटना का वर्णन मात्र एक नियम से कर दे तो व्याकरण 'ख' को बेहतर व्याकरण माना जाता है। जब भी हम व्याकरण की सरलता की बात करते हैं तो प्रवृत्ति हमेशा नियमों की संख्या के लिहाज़ से सोचने की होती है। मगर सरलता का एक और अपेक्षाकृत गहरा अर्थ है जिसे ध्यान में रखना चाहिए,

मतलब एक व्याकरण कितनी क़िस्म की संक्रियाओं की छूट देता है जो दूसरा व्याकरण नहीं देता। और मुझे लगता है कि सरलता की सचमुच महत्त्वपूर्ण बात वह है जो यह कहती है कि किसी भाषाई सिद्धांत में कितनी क़िस्म की संक्रियाओं का सहारा लिया गया है, ज़ोर नियमों की संख्या की बजाय क़िस्मों की संख्या पर है।

अब इस सबका शिक्षकों से क्या वास्ता? मेरे ख़्याल से भाषा की प्रकृति और भाषा अर्जन की प्रकृति को लेकर इस चौम्स्कीयाना नज़रिए ने एक महत्त्वपूर्ण काम यह किया है कि बिम्बों में एक बुनियादी बदलाव ला दिया है। आपमें से ख़ासकर पुराने शिक्षकों को याद होगा कि अंग्रेज़ी या कोई भाषा उसकी संरचनाओं के रूप में सिखाई जाती थी। यानी विचार यह था कि किसी भी भाषा को संरचनाओं और शब्दों के रूप में विभक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जैसे कक्षा 3 की पाठ्यपुस्तक में हम फलां-फलां संरचना और इतने शब्द सिखाएंगे और ये संरचनाएं रेखीय ढंग से (एक के बाद एक) सिखाई जाएंगी। यानी पाठ 1 में एक संरचना सिखाई जाएगी, पाठ 2 में शायद उस संरचना को दोहराया जाएगा और शायद एक और संरचना जोड़ी जाएगी। उन दिनों में भाषा शिक्षण का यही आदर्श स्वरूप था। सीखने और सिखाने के परस्पर सम्बंधों की एक सरल समझ थी। सोच यह था कि जो सिखाया जाता है, वही सीखा जाता है। शिक्षण के पुराने सोच में सिखाने और सीखने के बीच एक सीधा सम्बंध था और उसी के अनुरूप इस बात को लेकर भी एक सरल सोच था कि जब कोई चीज़ सीखी जाती है तो सीखनेवाले के दिमाग़ में क्या चलता है। संरचना सूची के पीछे विचार यह था कि हर संरचना एक आदत है, एक किस्म की तेज़ पुनरावृत्ति है। भाषा शिक्षण का यह चित्र, इसके लिए जो बिम्ब आप सोच सकते हैं वह था कोई इमारत या दीवार बनाने का। यही तो आप करते हैं, एक ईंट के ऊपर दूसरी और उसके ऊपर तीसरी रखते हैं वग़ैरह। दीवार चुनने का यह बिम्ब संरचनावादी भाषा शिक्षण के लिए एकदम सही रूपक था। इस बिम्ब को अब ख़ारिज़ कर दिया गया है और इसका स्थान हाथ-पैरों के विकास के चौम्स्कीयाना बिम्ब ने लिया है, यानी भाषा उपयुक्त हालात में विकसित होती है। मगर यह प्राकृतिक विकास है, और इस बात का शिक्षण पर क्या असर होगा? मेरा ख़्याल है कि आपमें से कुछ भाषा शिक्षक स्टीफन क्रेशन के काम से वाकिफ़ होंगे। स्टीफन क्रेशन ने एक किताब लिखी है, इनपुट हायपोथीसिस और इस छोटी सी किताब के अंतिम पैरा में वे एक दिलचस्प बात कहते हैं। वे कहते हैं कि मान लीजिए कि अमरीकी स्कूलों में आपको अचानक प्रांत के शिक्षा अधिकारी का निर्देश मिलता है कि कक्षा 8 के बच्चों को एक निश्चित कद, जैसे 5 फुट 8 इंच या ऐसा ही कुछ, हासिल कर लेना चाहिए। और जैसे ही यह निर्देश मिलता है सारे शिक्षक अपने छात्रों को नापना शुरू कर देते हैं और कुछ बच्चे इस ऊंचाई तक पहुंच चुके हैं, कुछ इससे अधिक हैं और कुछ बदकिस्मत बच्चे वांछित क़द से कम हैं। तो ऐसी परिस्थिति में शिक्षक उन बच्चों के लिए क्या कर सकता है जिनका क़द ज़रूरी क़द से कम है? शिक्षक यही कर सकता है कि उन्हें तानकर लंबा कर दे, जो दर्दनाक़ भी होगा और बेकार भी। क्रेशन का कहना यह है कि कद की तरह भाषा का ज्ञान भी शिक्षक के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के योग्य नहीं है। ऐसी स्थिति में (यदि पहले पता होता कि ऐसा फतवा आनेवाला है) शिक्षक यही कर सकता था कि उससे पहले के तीन-चार वर्षों में छात्रों की ख़ुराक और व्यायाम पर नियंत्रण रखता ताकि वे निर्देशित ऊंचाई स्वाभाविक तौर पर हासिल कर लें।

इसके अलावा शिक्षक कुछ नहीं कर सकता था। इसी प्रकार से शिक्षक प्रत्यक्ष तौर पर छात्रों को भाषा सिखाने के लिए कुछ नहीं कर सकता। शिक्षक यही कर सकता है कि बच्चे को एक अनुकूल माहौल में रखे ताकि भाषा अर्जन साधन चालू हो जाए और उसे मदद मिले और स्वतः वह व्याकरण विकसित करे जो शिक्षक सिखाना चाहता है। अर्थात् अब हो यह रहा है कि सिखाने और सीखने के बीच सम्बंध परोक्ष है। यह एक प्रत्यक्ष सम्बंध हुआ करता था, अब यह एक परोक्ष सम्बंध है। ज़रूरी नहीं कि भौतिकी या गणित पढ़ाने में भी यह सम्बंध परोक्ष हो, मगर एक क़िस्म के ज्ञान, उस क़िस्म का ज्ञान जिसे हम भाषा का ज्ञान कहते हैं, के मामले में यह सम्बंध परोक्ष ही रहना होगा।

ए.के. जयसीलन : सी आई ई एफ एल, हैदराबाद में कार्यरत हैं।

भाषा इन्सानों के लिए क्यों ज़रूरी है?

भाषा का विकास कैसे होता है?

भाषा संवाद व संप्रेषण का माध्यम है, चाहे वह बोलचाल के रूप में हो, चाहे लेखन के रूप में या फिर संकेतों में। यह प्रतीकों के निर्धारित ढांचे पर आधारित है। हमारे लिए संप्रेषण का एकमात्र तरीक़ा यही नहीं है, इसके अलावा बहुत से ग़ैरशाब्दिक तरीक़े भी होते है, संप्रेषण के। अलग–अलग संस्कृति में भावनाओं व संदेशों के अलग–अलग ग़ैरशाब्दिक तरीक़े होते हैं। इंसान और जानवरों के ग़ैरशाब्दिक संप्रेषण में कुछ–कुछ समानता होती है। परन्तु भाषा हमारे जीवन में अति ज़रूरी है, हमें इसकी ज़रूरत दूसरों से बात करने में, उन्हें सुनने, पढ़ने व लिखने में होती है।

भाषा हमें बीती हुई घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने व भविष्य की योजना बनाने के लिए तैयार करती है। भाषा के बिना हमारी सोच आज और अभी पर ही केन्द्रित होती। भाषा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सूचना व समझ को हस्तांतरित करना संभव बनाती है और एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर बनाती है। जो भाषा हम उपयोग करते हैं वह न उसे प्रभावित करती है बल्कि हम दुनिया के बारे में कैसे सोचते हैं इसे भी प्रभावित करती है।

भाषा व संज्ञान

हम हमेशा शब्दों के रूप में नहीं सोचते, किन्तु शब्दों के बिना हमारा सोच बहुत ही सीमित हो जाएगा। भाषा के सोच व विचार के साथ संबंध मनोवैज्ञानिकों के लिए बहुत रुचि का विषय रहा हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि हम भाषा के बिना सोच ही नहीं सकते। इस प्रस्ताव पर काफ़ी गर्मा–गर्मी हुई है। सवाल है कि सोच भाषा पर निर्भर व आधारित है या भाषा सोच पर?

भाषा की संज्ञान में भूमिका

महत्त्वपूर्ण संज्ञानात्मक गतिविधियों में भाषा क्या भूमिका निभाती है? पहली बात तो यह कि हमारी याद्दाश्त सिर्फ़ ध्वनियों (आवाज़ों) और छवियों में नहीं संग्रहित होती वरन् शब्दों के रूप में भी संग्रहित होती है। भाषा हमें सोचने में निष्कर्ष निकालने में, मुश्किल निर्णय लेने और समस्याएं हल करने में मदद करती है। भाषा विचारों को व्यक्त करने के उपकरण की तरह माना जा सकता है।

आज, ज़्यादातर मनोवैज्ञानिक उपरोक्त बातें मान लेंगे। लेकिन बैंजामिन वोर्फ (1956) ने एक क़दम और आगे लिया। उन्होंने कहा कि भाषा यह निर्धारित करती है कि हम कैसे सोचते हैं। उनके छात्र सेपियर वोर्पा का कहना है कि किसी भी अवधारणा के बारे में हमारी संस्कृति में उपलब्ध नामों की सूची में बहुत से शब्द हो सकते हैं या फिर बहुत थोड़े से। यह सोच कर देखें कि यदि आप किसी रेगिस्तान में रहते हैं तो ऊंट के बारे में आपके दिमाग़ी पुस्तकालय में कितने सारे शब्द होंगे जो आपके ऊंटों के साथ समृद्ध अनुभव पूरे बने होंगे। इसी प्रकार बर्फ के बारे में आपके दिमाग़ में बसी शब्दावली कितनी सीमित होगी अगर आप ख़ूब बरसातवाले पॉम के पेड़ों और तोतोंवाली दुनिया में रहते हैं। इसके सही प्रतीक होने के बावजूद वोर्फ की यह बात विवादास्पद है और बहुत से मनोवैज्ञानिक यह नहीं मानते की हमारी शब्दावली का हमारे विचार व मानसिक ढांचे को बनाने में कोई अहम भूमिका है। सोचें व पता करें कि वह इस तर्क के लिए क्या उदाहरण देते हैं? अमरीका के आदिवासी भाषाओं में विशेषज्ञ थे और वे इस बात पर बहुत गहराई से सोच रहे थे कि यह संभव है कि भाषा जिस तरह से एक दुनिया को देखते है उसको भी प्रभावित करें। अलास्का में रहनेवाले इन्यूइट के पास बर्फ के विभिन्न प्रकारों (रंग, खुरदुरापन व भौतिक स्थिति आदि) के आधार पर उन सबके बारे में बात करने के लिए दर्जन से ज़्यादा अलग–अलग शब्द हैं। अंग्रेज़ी में

इसके लिए बहुत कम शब्द हैं ओर वोर्फ के अनुसार अंग्रेज़ी बोलनेवाले बर्फ के बारे में इतनी आसानी से न तो बात कर सकते हैं और न ही सोच सकते हैं। उत्तरी अमेरिका के उत्तर–पूर्व में रहनेवाले आदिवासियों की होपी भाषा में भूतकाल और भविष्य के लिए कोई शब्द नहीं है, इसलिए, वोर्फ, कहते हैं कि सामान्य तौर पर होपी बोलने वाले वर्तमान पर ही केन्द्रित रहते हैं। वोर्फ के आलोचक कहते हैं कि शब्द सिर्फ़ यह दिखाते हैं कि हम कैसे सोचते हैं वे इसे निर्धारित नहीं करते। इन्यूइट की अलास्का की परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल पाना और उनमें अपने पालन के साधन ढूंढ़ पाना उनकी बर्फ की अलग–अलग प्रकार की स्थिति पहचानने पर निर्भर है। (हिन्दी में बर्फ और हिम दो अलग–अलग शब्द है जैसाकि अंग्रेज़ी में ice और snow दो ही शब्द हैं। ये दोनों शब्द अलग–अलग परिस्थिति को इंगित करते हैं।) ये हिन्दी में भी बर्फ बेचनेवाले कच्ची बर्फ व पक्की बर्फ के दो प्रकार पहचानते हैं। ज़ाहिर है कि बर्फ के पर्वतों पर चढ़नेवालों के पास यहां काफ़ी अन्य शब्द ज़रूर होंगे। एक स्की करनेवाला अथवा बर्फ पर बोर्ड पर चढ़कर चलनेवाला जो कि इन्यूइट भी नहीं है बर्फ (snow वाली) के लिए और भी बहुत से शब्द जानता होगा, सामान्य व्यक्ति से बहुत अधिक। वह व्यक्ति जो इन फ़र्क़ को नहीं देख सकता जिसके पास यह शब्द नहीं है वह इन अंतरों को शायद पहचान भी न सके।

इलेनोर रोश द्वारा किए गए एक अध्ययन ने दिखाया है कि किन्हीं लोगों के पास अवधारणाओं के लिए शब्द न होना उनकी चीज़ को महसूस कर पाने व उसके बारे में सोच पाने की क्षमता को महसूस कर पाने व उसके बारे में सोच पाने की क्षमता को नहीं रोकता है। उसने डानी समूह के लोग जो कि न्यू गिनी में रहते हैं उनकी रंगों की पहचानने की क्षमता पर भाषा के प्रभाव का अध्ययन किया। डानी लोगों के पास रंग के लिए दो ही शब्द हैं – एक जिसका अर्थ लगभग सफ़ेद के समकक्ष है और दूसरा जो लगभग काले के समकक्ष है। अगर भाषाई सापेक्षिता की धारणा सही हो तो डानी लोग हरे, नीले, लाल, पीले और जामुनी रंग के बीच अंतर नहीं कर सकेंगे। किन्तु रोश ने पाया कि डानी रंगों को ठीक वैसे ही देखते हैं जैसे हम। हम यह जानते ही हैं कि रंगों की अनुभूति व उन्हें देख पाने की क्षमता हमारी जैविक क़ाबलियतों में शामिल है और उसके लिए हमारे रेटिना में उपस्थित रिसेप्टर ज़िम्मेदार हैं। इसके बावजूद की वोर्फ की बात ठीक नहीं है और भाषा हमारे विचार व संज्ञान को तय नहीं करती – शोधकर्त्ता यह मानते हैं कि भाषा विचार को प्रभावित कर सकती है।

भाषा में संज्ञान की भूमिका

शोधकर्त्ता यह भी देखने का प्रयास कर रहे हैं कि क्या संज्ञान भाषा के लिए एक महत्त्वपूर्ण नींव है। अगर सामान्य तौर पर भाषा संज्ञान को प्रतिबिंबित करती है तब हम यह अपेक्षा करेंगे कि सामान्य समझ भाषाई क्षमता और बुद्धि क्षमता में क़रीबी रिश्ता है। ख़ास तौर पर हम यह अपेक्षा करेंगे कि एक क्षेत्र (भाषा) में आनेवाली समस्याओं के तुल्य समस्याएं दूसरे क्षेत्र (संज्ञान) में भी आएंगी। जैसे – यह कल्पना करेंगे कि सामान्य बौद्धिक पिछड़ना, भाषाई क्षमता में भी पिछड़ेपन को इंगित करेगा। यह कई बार होता है पर हर बार नहीं।

शोधकर्त्ताओं ने पाया है कि बौद्धिक पिछड़ने के साथ हमेशा भाषाई क्षमताओं में कमी नहीं पाई जाती। विलियम्स सिंड्रोम जिन बच्चों को होता है उनकी सामान्य बुद्धि को देखने पर वे पिछड़े लगते हैं। किन्तु इनकी भाषाई क्षमता औसत स्तर के भली–भांति अंदर होती है, भाषा को संप्रेषण के माध्यम के रूप में उपयोग करने में भी उनकी क्षमता कम नहीं होती। विलियम्स सिंड्रोम की प्रकृति यह इंगित करती है कि विभाग जैविक रूप से पहले से ही तैयार सोचने की व भाषाई क्षमताओंवाली इकाइयों से बना है। उसे एक सभी कार्यों को करनेवाली संज्ञान क्षमतावाली इकाई जिसमें भाषा भी शामिल है के रूप में नहीं देखा जा सकता।

सम्पूर्ण संज्ञान क्षमता भाषाई क्षमता से फ़र्क़ है का प्रमाण बहरे बच्चों पर किए अध्ययनों से भी मिलता है। सोचने व समस्या हल करने के बहुत से कामों में बहरे बच्चे, उसी उम्र के बाक़ी ठीक से सुन पा सक रहे बच्चों के समान ही कर पाते हैं। इस अध्ययन में शामिल बहुत से बच्चों को लिखित भाषा अथवा संकेत भाषा का भी ज्ञान नहीं था। (Furth 1977) संक्षेप में इसके बावजूद

विचारों का ढांचा हमारी भाषाई क्षमता को प्रभावित करता है और भाषाई क्षमता संभवतः विचारों के ढांचे को बहुत से प्रमाण उपलब्ध हैं जो दिखाते हैं कि यह दोनों (संज्ञान व भाषा) एक ही ढांचे के हिस्से नहीं हैं। इनका विकास जीव वैज्ञानिक प्रक्रिया में विभाग के अलग–अलग हिस्से के बने मॉड्यूल के रूप में हुआ है।

भाषा सीखना व भाषाई विकास

सन् 1799 में एक नंगा बच्चा फ्रांस के जंगलों में दौड़ता पाया गया था। जब उसे पकड़ा गया तब वह 11 वर्ष का था, चूंकि वह पास नहीं आता था इसलिए उसे पकड़ना पड़ा था। इसको एवेरोन के जंगली लड़के के नाम से जाना गया। ऐसा माना जाता है कि वह 6 साल से जंगल में अकेला रह रहा था। जब उसे पकड़ा गया तो उसने संप्रेषण का कोई प्रयास नहीं किया। कई वर्षों के बाद भी वह ठीक से अपनी बात समझाना व दूसरों की बात समझना नहीं सीखा। इस जंगली बच्चे का वाकया बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं, के बारे में कई सवाल उठाता है। क्या भाषा के नियम बना पाना और उनसे असंख्य शब्द बना पाना जैविक कारकों और जैविक विकास के कारण है? या फिर भाषा परिवेश से सीखी जाती है और उससे प्रभावित होती है? जैसा कि हम देखेंगे कि इन प्रश्नों के उत्तर जटिल हैं और अभी भी शोध का केन्द्र हैं।

भाषाओं व उनके विकास पर जीवन शास्त्रीय प्रभाव, हालांकि अलग–अलग लोग गणना के अलग–अलग अनुमान लगाते हैं, फिर भी सामान्यतः वैज्ञानिक मानते हैं कि इन्सानों ने लगभग 100,000 साल पहले भाषा हासिल की। इस प्रकार जैविक विकास के संदर्भ में भाषा एक काफ़ी नई इन्सानी क्षमता है। लेकिन, कई विशेषज्ञ मानते हैं कि जैविक विकास जिसने इंसानों को भाषाई क्षमतावाले जीव बनाया, पूरी भाषाई क्षमता के आने के बहुत पहले हो चुका था (चौम्सकी 1975)। हमारे पूवर्जों के दिमाग़, तंत्रिका तंत्र और वाक ढांचा लाखों साल में बदला। एक बार जीव वैज्ञानिक क्षमता आने के बाद इन्सान आवाज़ें निकालने व चिल्लाने से बढ़कर धीरे–धीरे अमूर्त भाषा तक पहुंचे। इस भाषाई क्षमता ने इन्सानों को बाक़ी जानवरों के मुक़ाबले काफ़ी बेहतर बना दिया और संघर्ष में उनके बचने की संभावना को भी बहुत बढ़ा दिया (पिंकर 1994)।

भाषावैज्ञानिक नोम चौम्सकी (1975) उनमें से एक हैं जो कहते हैं कि इन्सान भाषा सीखने के लिए जीव वैज्ञानिक रूप से तैयार होकर पैदा होते हैं। यह उनमें अंतर्निहित है कि वे एक विशेष समय पर और विशेष तरह से भाषा सीखेंगे। चौम्सकी व कई और भाषा विशेषज्ञों के अनुसार भाषा के जीववैज्ञानिक होने का पक्का सबूत यह है कि पूरी दुनिया के अलग–अलग भाषा बोलनेवाले व अलग–अलग मात्रा में अलग–अलग प्रकार के परिवेश से भाषाई अनुभव प्राप्त करनेवाले बच्चे भाषा सीखने के चरण विकास क्रम में लगभग साथ–साथ व उसी क्रम में सीखते हैं। जैसे कि कई संस्कृतियों में शिशु जब तक वे एक साल के न हो जाएं वयस्क कोई बात नहीं करते, फिर भी शिशु भाषा सीख लेते हैं। इसके अलावा जितनी जल्दी बच्चे भाषा सीख लेते हैं उसको समझने के लिए जीववैज्ञानिक कारकों के अलावा और कोई उपयुक्त नहीं लगता (लोक 1999, मारातोस 1999)। चौम्स्की की राय में बच्चे जो सुनकर उसकी नक़ल कर के सारे नियम व भाषा का ढांचा नहीं अख़्तियार कर सकते। इसके स्थान पर यही मानना होगा कि प्रकृति ने हर बच्चे के दिमाग़ में सार्वभौमिक व्याकरण का स्वरूप पहले से ही डाल रखा है जो उन्हें किसी भी भाषा के बुनियादी नियमों को समझने और जो सुन रहे उन पर लागू करने की क्षमता देता है। वे भाषा सीख जाते हैं बग़ैर उसकी संरचना के अंदरूनी तर्कों को जाने।

जो लोग यह मानते हैं कि भाषा का एक जीववैज्ञानिक आधार है उनकी बात का समर्थन करते हुए बहुत से प्रमाण हैं। तंत्रिका–तंत्र विज्ञान में हुए शोध ने यह दिखाया है कि दिमाग़ में विशेष हिस्से होते हैं, जिनकी प्रकृति उन्हें भाषा के लिए उपयोग करने योग्य बनाती है। ऐसा भी लगता है कि अभी जो प्रमाण इकट्ठे हो रहे हैं वे दिखाते हैं कि भाषा प्रसंस्करण ज़्यादातर बाएं अर्द्धगोलार्द्ध में ही होता है (डिक् व अन्य, 2004, ग्रॉडज़िंस्की, 2001)। काम कर रहे दिमाग़ की छवि बना कर उसे देखने से तस्वीर बनाने से फ़र्क़ होते हैं, यहां छवि बनाना उसके फोटो लेने के तुल्य नहीं है और न ही होलोग्राम के। शोधकर्त्ता ने पता किया है कि

जब लगभग 9 महीने के शिशु के दिमाग़ का जो हिस्सा स्मृति का भंडार व उसकी विषय सूची रखती है, वह पूरी तरह से कार्य करने लगता है। (ब्लूम नेल्सन और लेजरसन 2001)। इस समय के दौरान शिशु शब्दों को अर्थ देने में सक्षम बनता प्रतीत होता है। इससे भाषा, संज्ञान व दिमाग़ के विकास में संबंध दिखता है।

परिवेश का भाषा पर प्रभाव

व्यवहारवादियों ने भाषा को जीव वैज्ञानिक रूप से निर्धारित माननेवालों की बात नकारते हुए यह कहा है कि भाषा मुख्यतः परिवेश के प्रभाव से निर्धारित होती है। उदाहरण के तौर पर स्किनर (1957) ने कहा कि भाषा अन्य व्यवहारों जैसे चलना, भागना आदि जैसा ही एक और व्यवहार है। उन्होंने कहा कि सभी व्यवहार भाषा के समेत पुनरावर्ती व पुरस्कार से सीखे जाते हैं। अनर्बर बंदुश (1977) ने बाद में इस बात पर भी ज़ोर दिया कि भाषा नक़ल द्वारा सीखी जाती है।

रोजर ब्राउन (1973) ने छोटे बच्चों व उनके माता–पिता को अंतःक्रिया करते समय कई–कई घंटों तक देखा। वह इस बात का प्रमाण चाहते थे कि बच्चे माता–पिता के पुष्टीकरण व शाबाशी (मुस्कुराहट, प्यार से भींचना, पीठ थपथपना ठीक करने के लिए फीड बैक) से भाषा के नियम सीखते हैं। उन्हें पता चला कि माता–पिता उन वाक्यों के बोलने पर मुस्कुराते और शाबाशी देते थे जो उन्हें पसंद आने पर कई बार वह व्याकरणीय रूप से ग़लत बात पर भी शाबाशी दे देते थे। ब्राउन का निष्कर्ष था कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि पुष्टीकरण, सुदृढ़ीकरण भाषा के नियमों की समझ के विकास में मदद करता है। बच्चों के बहुत से वाक्य नये होते हैं क्योंकि वे बच्चों ने कभी सुने नहीं होते। एक बच्चा यह वाक्य सुनेगा कि 'प्लेट ज़मीन पर गिर गई', परन्तु तत्काल ही कह पाएगा कि 'मेरा कांच टेबल पर गिर गया।' नक़ल व पुष्टीकरण इस बात को समझा ही नहीं सकते।

हालांकि नक़ल व पुष्टीकरण बच्चों की भाषा के नियम पकड़ने के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं फिर भी यह आवश्यक है कि बच्चे भाषा की क्षमता रखनेवाले लोगों के बीच रह रहे।

ऐवरोन का जंगल से आया लड़का बचपन की शुरुआत में ऐसे लोगों के साथ नहीं रहा था, जो भाषा जानते हों, इससे उसके भाषाई विकास को नुक़सान पहुंचा था।

भाषा के सामान्य सीखने के ढंग पर एक और अध्ययन का विषय मां का शिशु के सामने बोलना व भाषाई क्षमता के विकास के सम्बन्ध का था। जैसा कि वे माएं जो शिशुओं के साथ भाषा का उपयोग ज़्यादा करती थीं, उनके शिशुओं के शब्दकोश अन्य से काफ़ी बड़े थे। दूसरे जन्मदिवस तक आते–आते शब्द क्षमता के यह अंतर काफ़ी स्पष्ट थे। शिशुओं के साथ बात करने के अच्छे तरीक़े व ढंग क्या हो सकते हैं? इनमें से कुछ हैं (बैसेन 1992) :

- एक सक्रिय बातचीत करनेवाले साथी बनें, वयस्क शिशु से बातचीत करने में पहल करें। अगर बच्चा पूरे दिन किसी बालवाड़ी में रहता है, तो सुनिश्चित कर लें कि उसे पर्याप्त भाषाई उद्दीपन (भाषा के साथ सम्पर्क) मिलता है।
- यह मानकर बात करें जैसे कि शिशु यह समझ रहा है कि आप क्या कह रहे हैं। वयस्क अगर ऐसा मानेंगे तो आपका यह मानना सच होने लगेगा और बच्चे समझने लगेंगे। इसमें 4–5 साल लग सकते हैं लेकिन धीरे–धीरे बच्चे, जो भाषाई माडल प्रस्तुत किए जा रहे हैं उनके स्तर तक पहुंच जाते हैं।
- जिस प्रकार की भाषाई शैली में आप व बच्चा सहज हैं वही इस्तेमाल करें, यह चिन्ता न करें कि शिशु से आपकी बातचीत बाक़ी वयस्कों को कैसी लग रही होगी। जो भावना आपकी बातचीत से महसूस होती है वह शिशु के लिए ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, बनिस्बत जो आप कह रहे हैं उसके। बच्ची के पहले साल में जिस भी तरह की शिशु बातचीत में आप सहज महसूस करें वह उपयोग करें।

भाषा सीखने पर परिवेश के प्रभावों पर हुए शोध इसके बुनियादी कारणों की समझ को उलझा देते हैं। भाषा सीखने की वास्तविक दुनिया में बच्चे न तो सिर्फ़ जीववैज्ञानिक रूप में भाषा सीखने के लिए पूरी तरह

तैयार दिखते है और न ही वे सिर्फ़ समाज व परिवेश से ही सीखते हैं (रेट्नर 1993)। जैसा कि मनोविज्ञान के हर पहलू के साथ होता है, हमें यह देखना होगा कि जीवविज्ञान व परिवेश कैसे अंतःक्रिया करते हैं। हालांकि इसका अर्थ यह है कि बच्चे जीववैज्ञानिक रूप से भाषा सीखने को तैयार होते है पर उन्हें उपयुक्त व पर्याप्त भाषाई परिवेश में छोटी उम्र से ही डूबे रहने से बहुत फ़ायदा होता है (पॉन एण्ड स्नो 1991, टोमासाला एण्ड स्लोबिन)।

शुरुआती भाषा का विकास

भाषाई विकास के बारे में एक रोचक बात यह है कि बच्चों की अन्य वयस्कों व माता–पिता के साथ होनेवाली भाषाई अंतःक्रिया कुछ नियमों का पालन करती है (माद्दिनी 1999)। यद्यपि बच्चे शब्दावली व अवधारणाएं एक छोटी उम्र से ही सीखते रहते हैं, वे साथ–साथ यह भी सीखते हैं कि भाषा कैसे गुंथती है। भाषा सीखने की इस पहल पर एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन में जीन बेर्को (1958) ने स्कूल पूर्व व कक्षा एक के बच्चों को कार्ड दिखाए। बच्चों को कार्ड देखना था, जबकि प्रयोग करने वाला उस पर लिखे शब्दों को ज़ोर से पढ़ता था। बच्चों को वह शब्द ढूंढ़ना था जो कि खाली स्थान पर आना था। इसका सही जवाब वुग्स था। वुग्स ढूंढ़ पाना आसान लग सकता है पर उसे ढूंढ़ने के लिए बहुवचन के अंत में आनेवाली अंतिम ध्वनि की सही समझ की ज़रूरत है। यद्यपि बच्चों के उत्तर हमेशा सही नहीं होते थे फिर भी बेतरतीब उत्तरों के क्रम से बहुत बेहतर थे। इस अध्ययन की सबसे प्रभावित करनेवाली बात यह है कि ये शब्द काल्पनिक थे और सिर्फ़ इस अध्ययन के लिए सोचे गए थे। बच्चे इसलिए अपने जवाबों को पुराने अनुभवों के आधार पर नहीं दे सकते थे और वे नियमों की मदद लेने को बाध्य थे।

साठ के दशक में, एरिक लेनन बर्ग 1917) ने कहा कि 18 माह में वयस्कता के बीच का समय अति संवेदनशील अंतराल है, इसी दौरान बच्चे को अपनी पहली भाषा और उसके नियम को हासिल करना है। इस बात की पुष्टि के लिए लेनन बर्ग ने बच्चों व वयस्कों जिनके मस्तिष्क के बाएं अर्द्धगोलार्द्ध पूरे ठीक नहीं थे, बहरे बच्चे, बच्चे जिनके दिमाग़ का विकास नहीं हुआ था और अन्य लोग जो सामान्य तरह से भाषा नहीं सीख पाए थे इन सबका अध्ययन किया (लोगर एण्ड लूसबर्ग 1994, 1999)। लेनन बर्ग ने पाया कि जिन बच्चों पर उसने अध्ययन किया वे तो अपनी भाषाई क्षमता पुनः प्राप्त कर पाए, किन्तु वयस्क नहीं कर पाए। लेनन बर्ग का मानना है कि फ़र्क़ यह है कि बच्चों के दिमाग़ में लचीलापन था और वह भाषाई क्षमताओं को इन हिस्सों को दे पाए जिनमें कोई भी चोट नहीं थी। चूंकि वयस्कों के दिमाग़ पक चुके थे और ज़्यादा सख़्त हो गए थे इसलिए वयस्कों में यह क्षमता नहीं बची थी कि वह भाषाई क्षमता पुनः हासिल कर ले।

हाल ही के जंगल में रह रहे बच्चे जो कि ऐवरोन की तरह थे उनकी अधूरी भाषाई क्षमता भी भाषा हासिल करने के लिए महत्त्वपूर्ण विशेष समय की बात की पुष्टि करती है। 1970 में कैलिफोर्निया के एक सामाजिक कार्यकर्त्ता को एक 13 वर्षीय लड़की जिनी मिली जिसे दुनिया से अलग ताले में रखा गया था। पूरे बचपन में खुलकर हिलने–डुलने से भी प्रतिबंधित व बिलकुल अकेलेपन में रखी गई जिनी, न तो बोल सकती थी और न ही सीधे खड़ी हो सकती थी। जब भी वह कोई आवाज़ निकालती उसका पिता उसे मारता। वह उससे शब्दों में बात नहीं करता था और उस पर गुर्राता और भौंकता था। जिनी ने पुनर्वास कार्यक्रमों में कई वर्ष गुज़ारे। इसमें चलने–फिरने व बोलने के भी कार्यक्रम थे (कर्टिसन, 1977, राइमर 1993)। वह आख़िर तक कई शब्दों को समझना सीख गई और टूटे फूटे वाक्य भी बोलने लगी। सामान्य बच्चे जिस तरह सवाल पूछते हैं ऐसा जिनी नहीं कर पाई थी और वह व्याकरण नहीं समझती थी। वह अलग–अलग सर्वनामों के बीच विभेद नहीं कर पाती थी और सक्रिय व निष्क्रिय क्रिया भी अलग नहीं कर पाती। वयस्क होने के बाद भी वह छोटे–छोटे बेतरतीब वाक्यों में ही बोलती थी, जैसे ''पिता टांग मारा'' और जिनी चोट। इस बच्ची की यह दुःखद कहानी इस बात की पुष्टि करती है कि लोगों को बचपन में ही भाषा के नियम सीखने होते हैं, वरना वह भाषा में पूर्व सक्षम होने से रह जाएंगे।

सौभाग्य से ज़्यादातार लोग बचपन

में ही अपनी–अपनी भाषा के ढांचे की स्पष्ट समझ व एक बड़ी शब्दावली पा लेते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिकी देश में ज़्यादातर वयस्क 50,000 या इससे अधिक शब्द सीख जाते हैं। जिस प्रक्रिया से भाषा के ये पहलू विकसित होते हैं उसमें शोधकर्त्ताओं ने बहुत रुचि ली है। कई अध्ययनों के माध्यम से वे भाषा अख़्तियार करने की प्रक्रिया के प्रमुख पड़ाव अब समझते हैं।

अपने पहले शब्द बोलने से पहले शिशु तुतलाते हैं। याने एक ही आवाज़ और अक्षर को बार–बार बोलते ही जाना, जैसे बा, बा, बा अथवा दा, दा, दा। इसकी शुरुआत 3 से 6 माह की उम्र में होती है और जीववैज्ञानिक विकास व शारीरिक तैयारी से होती है न कि सुदृढ़ीकरण अथवा सुनने की क्षमता के (लोक 1993)। बहरे शिशु भी काफ़ी देर तक तुतलाते रहते हैं। (लेनन बर्ग, रेबेलेस्की और निकोलस 1963)। तुतलाने की यह प्रक्रिया शिशुओं के स्वर तंतुओं की कसरत करवा देती है और उसे अलग–अलग आवाज़ को तौल पाने में मदद करती है।

बोलना शुरू करने के बहुत पहले से ही शिशु बोली गई, बहुत सी आवाज़ों में 6 अर्थपूर्ण आवाज़ों को छांट पाते हैं। पैट्रिशिया कुहल (1993, 2000) कहती हैं कि जन्म से लगभग 6 महीने की उम्र तक बच्चे सार्वभौमिक भाषाविद् होते हैं। वे उस हर आवाज़ को अलग पहचान सकते हैं जो इन्सानी भाषा बनाती है। लेकिन 6 महीने की उम्र तक आते–आते वे अपनी स्वाभाविक भाषा की आवाज़ों पर केन्द्रित होने लग जाते हैं।

10 से 13 माह की उम्र के बीच बच्चे के पहले शब्द आते हैं। इनमें सबसे पहले महत्त्वपूर्ण शब्द हैं क़रीबी लोगों को कैसे पुकारूं (दादा, नाना, मामा, नानी, मौसी आदि), परिचित जानवर के नाम (किटी), गाड़ियां, खिलौने (बॉल), खाना–पीना (दूध), शरीर के अंग, (आंख) कपड़े (टोपी), घर का सामान (घड़ी) और अभिवादन (इलम)। 50 साल पहले भी यही शिशुओं के पहले शब्द थे और आज भी शिशुओं के पहले शब्द यही हैं (क्लार्क 1983)।

बच्चे जब 18 से 24 माह की उम्र में पहुंचते हैं वे सामान्यतः दो शब्दवाले कथन बोलने लगते हैं। वे अवधारणाओं को व्यक्त करने का महत्त्व जल्दी से समझ लेते हैं और अन्य के साथ भाषा संप्रेषण में क्या भूमिका अदा करती है यह भी जान जाते हैं (शेफर, 1999)।

दो शब्दोंवाले कथनों से अपनी बात को सार्थक ढंग से व्यक्त करने के लिए बच्चे हाव भाव, बोलने का ढंग, उतार–चढ़ाव व संदर्भ का बहुत उपयोग करता है। लेकिन फिर भी दो शब्दों से ही बच्चे बहुत सारा अर्थ व्यक्त कर पाते हैं (स्लोविच 1972)।

जैसे : पहचानने के लिए : कुत्ता देखो

वस्तु की जगह दिखाने के लिए : किताब वहां

दोहराने के लिए : और दूध

कुछ बचा नहीं : सब गई चीज़

नकारने के लिए : भेड़िया नहीं

गुण बताना : बड़ी कार

कर्त्ता–कार्य : मां चलो

क्रिया सीधे किसी पर : तुम्हें मारूंगा

क्रिया सीधे नहीं : पापा को दो

क्रिया–उपकरण : चाकू काटो

सवाल : गेंद कहां?

यह उदाहरण उन बच्चों के हैं जिनकी पहली भाषा अंग्रेज़ी, जर्मन, रूसी, फिनीश, टर्किश और समोअन थी। हर भाषा में बच्चे द्वारा उपयोग किए गए पहले दो शब्दवाले उच्चारणों ने यह कम शब्द तार की भाषा जैसे गुण होते है, जिसमें सब ग़ैर ज़रूरी छोड़ दिए जाते हैं। तार जैसी भाषा दो शब्दवाले उच्चारणों तक सीमित नहीं होती। जैसे–जैसे बच्चे दो – शब्दवाला चरण छोड़ते हैं, वे जल्दी ही तीन, चार और पांच शब्दवाले उच्चारणों जैसे ''मां आइसक्रीम दो,'' या मां–टौनी को आईसक्रीम दो।''

माता–पिता व अन्य परिवार के सदस्यों के साथ हुई अनौपचारिक अंतःक्रिया भाषा की क्षमता के शुरुआती विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान अदा करती है। लेकिन, स्कूल की औपचारिक शिक्षा भी इसके लिए जरूरी है। यहां बच्चे भाषा संरचना के ज़्यादा गहरे और विस्तृत नियम सीखते हैं, अपने शब्दकोश को बढ़ाते हैं और व्यापक अवधारणाएं सीखने में भाषा कौशलों का उपयोग करते हैं।

बालक की भाषाई क्षमता

हृदय कांत दीवान

बालक की क्षमता

भाषा पढ़ानेवाले और प्रारम्भिक कक्षाओं के अध्यापक इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि उनकी कक्षा में जो बालक है वह एक योग्य प्राणी है। चार साल का एक बालक भाषा की दृष्टि से इतना वयस्क होता है कि वह अपनी भाषा में वार्तालाप कर सकता है। इसके अन्तर्गत केवल शारीरिक क्रियाकिलाप ही नहीं आते अपितु अपने चारों ओर के वातावरण को व्यवस्थित करने एवं उसके साथ व्यवहार करने में भी समर्थ है। और यही नहीं अपने दायरे के अन्तर्गत संबंधों और परिवर्तनों का कुशलता पूर्वक उपयोग करने में भी समर्थ है। वह कल्पना कर सकता है, अनुमान लगा सकता है और उसमें गिनती (अंकों) और मात्रा की समझ है। इस क्षमता को उसने स्वयं ही अपने चारों तरफ़ के संसार के साथ जुड़ाव से, नैसर्गिक रूप से प्राप्त कर लिया है।

बालक के द्वारा ग्रहण किए गए इन सभी क्षेत्रों में यह सबसे अधिक विश्लेषित और जाना माना क्षेत्र ''भाषा'' है। भाषा मानव और बालकों के ज्ञान का केन्द्र बिन्दु होता है। यद्यपि यह विवादित है कि क्या अपने दृष्टिकोण से ही बालक अपने संसार को बनाता है, पर यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि उसकी भाषा ही उसके विकास को प्रभावित करती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषा अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और हमारी पहचान का एक घटक भी है। घटक इस अर्थ में है कि यह हमें परिभाषित करता है एवं हमारे विकास को आकार प्रदान करता है।

बालक भाषा संबंधी सभी स्थितियों को संभाल सकता है:

विद्यालय में आनेवाले बालक की क्षमता को समझने की दृष्टि से हमें इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि वह अपने चारों ओर के समुदाय के साथ व्यवहार करने में समर्थ है एवं घर पर सभी कार्यों में पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता है। वह अपने समाज और संस्कृति और भाषा संबंधी वातावरण के सभी विषम घटकों के साथ न केवल संप्रेषण करने में समर्थ है अपितु उनके साथ सक्रिय रूप से जुड़ा है। वह भाषा को किसी भी संदर्भ में अथवा किसी भी संदर्भ के लिए प्रयोग कर सकता है जिसका कि वह हिस्सा रहा हो अथवा जिसका उसे अनुभव है। वह अपनी भाषा को उचित प्रकार से समायोजित कर सकता है और जिस व्यक्ति से वह बात कर रहा है उसकी स्थिति और अवसर को ध्यान में रखते हुए इसमें उचित समायोजन कर सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि विचार–विनिमय के तरीक़े को चुनने में वह कोई भूल अथवा त्रुटि नहीं कर सकता अथवा कोई भूल नहीं करेगा। अपितु उससे भूल इसलिए भी हो सकती है क्योंकि वह परिस्थिति को उचित ढंग से पढ़ नहीं रहा है। किसी विशेष परिस्थिति में कैसे व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में उसमें समझ की कमी नहीं है। वह जानता है कि यदि कोई उससे उम्र में बड़ा है अथवा यदि उससे कोई विनती करता है तो उसे शिष्ट होना पड़ेगा और यदि वह शिष्टता नहीं दिखाता है तो उसके पास इसका कोई कारण होगा। वह स्तरों का अनुभव करने, उन्हें समझने में सक्षम है और वह जानता है कि परिस्थिति को अपने पक्ष में कैसे किया जाए। वह अपनी भाषा का धाराप्रवाह उपयोग करके अपनी इच्छाओं को व्यक्त करता है, अपने अनुभवों के विषय में बात करता है और अपनी भावनाओं का आदान–प्रदान करता है। निश्चित रूप से ये सभी कठिन क्रियाएं हैं एवं यदि विस्तार से इनका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला जाए तो उनकी क्या आवश्यकता है, तो सूची बहुत चकित करनेवाली होगी। बोलने

के लिए क्या चाहिए :

बोलने की क्रिया अपने आप में सरल होती है। आइए, देखते हैं कि इसके अन्तर्गत क्या आता है। एक मौटे तौर पर हम कह सकते हैं कि वार्तालाप का अर्थ है विचारों का आदान–प्रदान करना। जिस विचार को हम संप्रेषित करना चाहते हैं वह (समझने योग्य) होना चाहिए। इसके लिए हमें जो बोलना है उसका एक चित्र हमारे पास हो और हमें पहले से ही सचेत रहना चाहिए कि किस विषय पर चर्चा होने जा रही है। यदि विचार किया जाए कि किसी विषय पर चर्चा में भाग लेने हेतु क्या आवश्यक है तो हम देख पाएंगे कि इस प्रक्रिया में, इस बारे में पूर्व अनुमान लगाना सम्मिलित है कि जब एक व्यक्ति बोल रहा है तो दूसरा व्यक्ति क्या कर रहा है। और जब बालक अपना पहला शब्द कहता है तो फिर दूसरा शब्द और उसके बाद और शब्द तो आप समझ सकते हैं कि वह क्या कह रहा है। कभी–कभी तो बालक के वाक्य समाप्त करने से पूर्व ही हम अपनी प्रतिक्रिया तैयार कर लेते हैं। कभी–कभी किसी व्यक्ति के द्वारा वाक्य पूरा करने से पहले ही हम समझ जाते हैं कि वह क्या कह रहा है और हम उत्तर देना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि वास्तव में इस विषय पर विचार किया जाए तो हम स्पष्ट रूप से अपनी विशाल क्षमताओं को पहचान पाएंगे, विशेष रूप से हम जो कुछ कहना चाहते हैं उसके कहने की क्षमता को एवं कब और क्या कहना है इस क्षमता को हमारे व्याख्यान में जीभ का भ्रमित होना इस तथ्य को भी दर्शाता है कि किसी विषय को बोलते हुए ठीक उसी समय हम अपने अगले शब्द के विषय में भी सोच रहे होते हैं, जिसे हम बोलने जा रहे हैं।

जीन आइचिसन ने अपनी पुस्तक दी आर्टीकुलेट मैमल में इसका एक उदाहरण दिया है–

जीवों के अनुकूलन का एक प्रकार जो बहुत स्पष्ट तो नहीं है– परन्तु दूसरी दृष्टि से देखने पर यह पूर्णरूप से विस्मयकारी है– वह है ''समन्वित प्रक्रियाओं का गुणन'' (लैशले 1951) जो वाणी निर्माण एवं बोध की प्रक्रिया में घटित हो रहा है। क्रियात्मकता के कुछ क्षेत्रों में एक से अधिक कार्यों को एक साथ एक ही समय पर करना अत्यन्त कठिन है। जैसा कि विद्यालय के बच्चों ने खोजा कि वह असाधारण एवं कठिन कार्य है कोशिश करें कि एक ही समय पर सिर पर थपकी दी जाए और पेट को रगड़ा जाए। यदि आप भी अपनी जीभ को किनारों से एक से दूसरी ओर मोड़ने की कोशिश करें और अपने पैरों को एक दूसरे में फंसाने व खोलने का कार्य करें और इसके साथ अपने सिर पर थपकी दें और अपने पेट को रगड़ रहें हो तो आप पाएंगे कि ये सभी क्रियाएं असम्भव हो जाती हैं।

किसी भी संभाषण में, न्यूनतम तीन प्रक्रियाएं एक साथ सम्पन्न होती हैं, प्रथम ध्वनियां वास्तव में उच्चारित होती हैं; द्वितीय, शब्द समूह अपनी मौखिक स्वध्वनि के रूप में उपयोग होने के लिए क्रियाशील होते हैं; तृतीय, शेष वाक्य की कल्पना की जाती है और इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया सम्भवतः उससे अधिक जटिल है जितनी की प्रथम दृष्टया प्रतीत होती है।

यह मानकर चलें कि एक शब्द जैसे की गीस का (GEESE) का उच्चारण करते समय सर्वप्रथम ग (G) की ध्वनि और इसके ई (EE) की ध्वनि उच्चारित होगी और इसके पश्चात् इसी क्रम में स (s) ध्वनि उच्चारित की जाएगी। लेकिन ये सभी प्रक्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

पहले शब्द गीस में 'ग' ध्वनि तथा शब्द गूस (GOOSE) की 'ग' ध्वनि में बहुत अधिक अंतर है। दोनों 'ग' ध्वनि के बाद आनेवाले स्वरों में अंतर के कारण ऐसा होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बोलनेवाला ई या ऊ की कल्पना (अचेतन में) करता है और 'ग' ध्वनि उनके अनुसार बदल जाती है।

इसलिए एक वक्ता अलग–अलग तत्त्वों की एक शृंखला में उच्चारण नहीं करता है।

1	2	3
ग	ई	स

इसके स्थान पर एक वह एक–दूसरे से जुड़ी हुई ध्वनियों की एक श्रेणी का सम्पादन करता है, जिसमें कि बाद में प्रयुक्त की गई ध्वनियां पहले आनेवाली ध्वनि पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

ग.....

ई....

स....

इस प्रकार के पारस्परिक गुंथन के लिए अत्यधिक मात्रा में दिमाग़ी मांसपेशियों के समन्वय की आवश्यकता होती है, विशेषरूप से इसलिए कि बोलने की दर अथवा गति पर्याप्त रूप से तेज़ होती है; आइचिसन इसका उदाहरण देती है;

''जिस व्यक्ति ने कहा– '' आन दी नर्वस ऑफ ए वर्गस ब्रेक डाउन''

उसने भी उसके द्वारा इसकी आवश्यकता से पूर्व ही ध्वनि नर्व को गतिशील किया है।

अर्थपूर्ण दृष्टि से बोलना एक सरल प्रक्रिया नहीं है। किसी व्याख्यान में ध्वनियां इस प्रकार व्यवस्थित की जानी चाहिए कि वे ठीक वही अर्थ प्रकट करें जैसा कि हम चाहते हैं। यदि हम ध्वनियों के व्यवस्थित करने के तरीक़े का थोड़ा भी विश्लेषण करें तो हमें इसके लिए आवश्यक योग्यता को जानकर आश्चर्य होगा।

प्रत्येक ध्वनि को निकालने के लिए यह आवश्यक है कि वाग्यंत्र के विभिन्न भागों की मांसपेशियां एक निश्चित स्थिति में हो। किसी भी पाठ्यपुस्तक में यह कि ओठों, जीभ, स्वर–नालिका एवं मुंह का प्रयोग कैसे किए जाए, विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। हम इसका वर्णन न तो कर सकते हैं और न ही करते हैं। प्रत्येक शब्द विभिन्न ध्वनियों का एक समूह होता है और बालक इन सभी ध्वनि समूहों तथा इसी क्रम में आवश्यक अन्य चरणों को सम्पन्न करने की योग्यता रखता है। ध्वनियां इकाइयों को जोड़ने से लेकर शब्दों को बनाना और इसके बाद बातचीत में भाग लेने के लिए सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है। वार्तालाप करने के अंतर्गत कुछ अन्य पहलू सम्मिलित हैं जैसे कि स्वर को समझना और उसका प्रयोग करना, विराम चिह्नों का प्रयोग करना और शरीर के अन्य अंगों से प्रकट होनेवाली अभिव्यक्ति को उस सबके के साथ जोड़ना। इनमें से कुछ जो बच्चों द्वारा ठीक प्रकार से ग्रहण करने में अत्यन्त कठिन होती है, विद्यालय के वातारण में नैसर्गिक रूप से बच्चों की अपनी भाषा एवं संदर्भ में विचारों का आदान–प्रदान से आती है। वहां का वातावरण कम औपचारिक और कम दबावकारी होता है।

अवधारणाएं और बालक

एक बालक भाषा प्रयोग नए विचारों को ग्रहण करने और अपनी अवधारणाएं बनाने के लिए करता है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सभी प्रकार के विचार चार वर्ष के एक बालक द्वारा ग्रहण किए जाते हैं यद्यपि वह इन्हें स्वयं के आधार पर ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, सभी प्रकार के फर्निचर की अवधारणा, सभी प्रकार के सामाजिक और पारिवारिक संबंधों की अवधारणाएं और इसके अंतर्गत सभी प्रकार की भिन्नताएं और पदसोपान, कृषि और पौधों के जीवन से संबंधित अवधारणाएं, त्योहारों और गृहकार्य इत्यादि से संबंधित विचार अथवा अवधारणाएं। इन सभी प्रकार की सूचनाओं को बालक एक स्पंज की भांति आत्मसात् कर लेता है। हम मान सकते हैं कि इनमें से कुछ सूचनाएं उसके लिए अनावश्यक होंगी कुछ सूचनाओं का जानना उसके लिए महत्त्वपूर्ण होगा। परन्तु वह इन सभी को सीखता है। एक बार जब वह इन सबके विषय में वार्तालाप करने में सक्षम हो जाता है तो उसे कोई नहीं रोक सकता। चाहे वह लोगों, बर्तनों, पेड़–पौधों, जन्तुओं, ऋतुओं के नाम हों अथवा कौन आ रहा है और कब कौन जा रहा है और कहां जा रहा है, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से क्या संबंध है, बाजार में क्या बातचीत हुई, और अन्य कई चीज़ें, बालक इन सब के बारे में जानता है। इसके अतिरिक्त, बालक तर्क निर्माण करने, अपने अधिकारों की रक्षा करने, परिस्थितियों का विश्लेषण करने और साथ ही सपनों और कल्पना के संसार का निर्माण करने में भाषा का उपयोग करता है। जिन शब्दों को वह जानता है उनका उपयोग करके संसार के वर्णन का निर्माण करता है और इसी प्रकार अपने सपनों का भी निर्माण करता है।

बालक और वाक्य रचना

बालक की क्षमता को समझने के लिए मात्र वैचारिक शब्द जो वह जानता है उनकी लयबद्धता, वार्तालाप की व्यवस्थित क्रमिक प्रक्रिया आदि की दृष्टि से देखना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु भाषा की वाक्य रचना से संबंधित उसके अचेतन ज्ञान को समझना भी आवश्यक है। बालक जिस परिस्थिति का वर्णन कर रहा होता है उसके अनुरूप वह क्रिया के सभी रूपों का उपयोग सही ढंग से करता है। यदि भाषा में संज्ञा और सर्वनाम के कई रूप हैं तो वह इनके सही रूप का ही उपयोग करता है।

अपनी स्वयं की भाषा में वह काल, एकवचन अथवा बहुवचन, लिंग और संधियों के सही रूप का प्रयोग करने में कोई भूल नहीं करता। यदि हम हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के कुछ (लगभग दस) अलग–अलग वाक्यों को लें और उनका विश्लेषण करें तो हम जानेंगे कि ये वाक्य जो अलग–अलग संदर्भों से चयनित किए गए हैं जिसमें कि बालक भाग लेता है, उन्हें बनाने के लिए शब्दों के सही रूपों का ज्ञान और उन्हें व्यवस्थित करने की उच्च क्षमता तथा इन शब्दों को कैसे युग्मित किया जाए इन बातों का अचेतन ज्ञान होना आवश्यक है। तीन या चार वर्ष के एक बालक द्वारा प्रयोग किए गए वाक्य उनके द्वारा इनमें सूक्ष्म अंतर कर पाने की क्षमता की ओर संकेत करता है।

विभिन्न भाषाओं में वाक्य कैसे बनते हैं, इस बात पर विचार किया जाए तो हम पाएंगे कि प्रत्येक वाक्य कई भिन्नताएं लिए होता है। आप कर्ता, कर्म, संधि, काल या कुछ और भी बदल सकते हैं। हालांकि अल्प परिवर्तन भी कभी–कभी वाक्य के अर्थ बदलने का कारण बन जाते हैं, और अभी परिवर्तन संदर्भ में सम्भाषण में परिवर्तन और अथवा उसी संदर्भ में वाक्य रचना के नये नियमों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, हम क्रिया के रूप को परिवर्तित कर सकते हैं। प्रत्येक स्थिति में प्रयुक्त क्रिया का रूप वाक्य के लिए उपयुक्त होना चाहिए।

हमें इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि बालक लगातार नये शब्दों के संपर्क में आता है। एक बार जब वह किसी शब्द को वृहद् अर्थ में जान लेता है तो वह इस पर और गहरी समझ विकसित करने हेतु अलग–अलग संदर्भों में इसका प्रयोग करता है। एक शब्द के सभी रूपों का नियमानुसार निर्माण और प्रयोग करने लगता है। इनमें से कई नियमों को विभिन्न भाषा विद्वानों द्वारा मान्यता दी गई है तथा कुछ व्याकरण की पुस्तकों में शामिल किए गए हैं लेकिन इनमें से कई शब्द अभी भी खोजे और चिह्नित नहीं किए जा सके हैं। भाषाविद् सदैव भाषाओं के लिए बेहतर व्याकरण और नियमों का निर्माण करने का प्रयास करते रहते हैं जो कि अलग–अलग संदर्भों में समावेश अथवा उपयोग के योग्य है। इन नियमों के निर्मित होने और अभिव्यक्त होने के बहुत समय पूर्व से उस भाषा के स्थानीय वक्ता उनकी आपसी समझ के माध्यम से इनका प्रयोग करते रहे हैं। निःसन्देह, इन सभी नियमों की नई परिवर्तनोंसहित समझ बच्चे के लिए उपलब्ध होती है।

बालक में गणितीय योग्यताएं भी होती हैं

इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि स्कूल आनेवाला एक बालक गणितीय योग्यताएं रखता है। ये योग्यताएं संसार के साथ उसके आपसी मेलजोल और प्रतिक्रिया के माध्यम से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, मात्रा (क्वांटिटी) के विषय में उसे आकार और संख्या दोनों का ही बोध होता है। वह आकार, दूरी, स्थान, स्वरूप और ठीक इसी प्रकार मार्गों के विषय में ज्ञान रखता है और इस सारी प्रक्रिया में वह अनुमान लगाने और एक विस्तृत समझ को खोजने और बनाने हेतु अपनी समझ का उपयोग करता है। और उसे संचालित और नियंत्रित करने की क्षमता रखता है। और वह जो करना चाहता है उसमें सहायता के लिए अपने चारों तरफ़ के अनुभवों के आधार पर वह इसका क्रियान्वयन करने में समर्थ है। वह प्राकृतिक तरीक़ों को पहचानता और समझता है और कारण प्रभाव संबंधों की अपनी समझ के आधार पर वह आगे घटित होनेवाली घटनाओं का अनुमान लगाने में भी सक्षम होता है। हमारे लिए बैठकर इसके बारे में सोचना रुचिकर होगा कि जिस स्थल को बच्चे के लिए चिह्नित किया गया है और जिस कारण प्रभाव संबंधों के बारे में वह अवगत है उसका उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में नैसर्गिक रूप से करने में योग्य है।

यह सब कैसे ग्रहण किया गया है

स्पष्ट रूप से यह सभी विशाल स्रोत है परन्तु इससे पहले कि हम स्रोत के किसी भाग के उपयोग के विषय में जानें, प्रक्रिया के उन प्रमुख लक्षणों की ओर दृष्टिपात करना लाभप्रद होगा जिनके माध्यम से बालक उन सभी क्षमताओं को प्राप्त करता है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि मानवीय अन्तःक्रियाओं के अभाव में भाषा क्षमता का विकास नहीं होता है। ऐसे भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि भिन्न–भिन्न पृष्ठभूमि और समुदायों से आनेवाले बच्चे विभिन्न प्रकार की

क्षमताएं अर्जित कर लेते हैं और उनका अनुभव उनके ज्ञान को प्रभावित करता है। तथापि ज्ञानार्जन के कुछ सामान्य लक्षण हैं और किंचित् सामान्य अवस्थाएं हैं। किन्तु ज्ञानार्जन एक समान नहीं होता। हम अपने स्वयं के अनुभवों से जानते हैं कि वयस्क लोग बच्चों को उनके द्वारा सीखने के प्रक्रिया में सहायता करने का प्रयास करते हैं। वे सब अपने सर्वश्रेष्ठ तरीक़ों से करते हैं। कुछ मामलों में या तो बच्चों की तरह बोलकर उन्हें आराम का अहसास कराते हैं या फिर बच्चे को जो कुछ बोलना है उसे कई भागों में बांटकर आसान बनाते हुए बच्चों द्वारा उनकी नक़ल करने और उसे बार–बार दोहराने का अभ्यास कराया जाता है। अथवा बालकों से हुई ग़लतियों में सुधार करते हुए उससे सही वाक्य को बार–बार दोहराने के लिए कहा जा सकता है। परन्तु जो स्पष्ट है वह यह है कि इन सभी क्रियाओं में बालक के प्रति एक भावनात्मक लगाव रहता है और वह स्वयं को महत्त्वपूर्ण अनुभव करे इस बात की स्वीकारोक्ति होती है। यह स्वीकारोक्ति और साथ ही प्रोत्साहन बच्चे के ज्ञानार्जन में बहुत महत्त्वपूर्ण है।

तथापि, यह स्पष्ट है कि इस प्रकार प्रोत्साहन देने, उद्यत करने और मार्गदर्शन से कुछ अधिक नहीं सीखा जा सकता। इस प्रक्रिया में बालक का जितना विकास हो सकता है वह उससे कहीं अधिक ज्ञान और क्षमता रखता है। बच्चों की कितनी ग़लतियों को सुधारकर हम उनकी सहायता कर सकते हैं। कितना और क्या सब कुछ सीखने में हम बच्चों का मार्गदर्शन कर सकते हैं? हम भी यह जानते हैं कि जो बात नहीं चाहते बच्चा उसी को श्रेष्ठता से सीखता है। बालक ऐसी अनेक बातें सीख लेता है जिन्हें हम चैतन्य रूप से जानते तक नहीं और उसे यह नहीं बता सकते कि यह कैसे संभव होगी और उस कार्य को करने में वह कैसे सक्षम हो सकता है तो हमारे द्वारा दी गई आज्ञा और हमारा मागदर्शन बच्चों के कार्यों में उनकी कितनी सहायता कर सकता है? बालक के ज्ञान का परिणाम हमें यह तय करने की ओर प्रेरित करता है कि यह व्यावहारिक अनुसरण नहीं है अपितु मानव समाज में व्याप्त नैसर्गिक अन्तःक्रिया एवं तत्परता है जो एक बालक द्वारा यह सब कुछ सीखना संभव बनाती है। मात्र एक तथ्य कि बालक के लिए मानव पर्यावरण अस्तित्व में है और वह अनेक सहानुभूतिपूर्ण एवं शुभाकांक्षी व्यक्तियों के साथ विचारों का आदान–प्रदान कर रहा है, यह तथ्य बालक में इस प्रकार की क्षमता निर्माण के लिए अनिवार्य है।

क्या बालक अनुकरण (नक़ल करके) से ज्ञान प्राप्त करते हैं

जब हम यह मान लेते हैं कि बालक मानव संसार के साथ पारस्परिक संपर्क से सीखता है। तो यह भी हम समझ सकते हैं कि पारस्परिक संबंधों की प्रकृति उसके ज्ञान को प्रभावित कर सकती है। यह एक प्रसिद्ध मत है कि ''बालक नक़ल करने से सीखता है।'' इस विषय पर उतनी ही चर्चा की जाने की आवश्यकता है जितनी की एनसीटीई पाठ्यक्रम प्रारूप 2006 अथवा एनसीएफ–2005 में की गई है। यह महत्त्वपूर्ण है कि हम इस पर एक दृष्टि डालें क्योंकि हमारे द्वारा बालकों के लिए निर्मित अनेक अनुभव उन पर प्रभाव डालते हैं। यदि मनुष्य नक़ल करके अथवा अनुकरण से सीखता है तो तर्कों एवं सीखने की प्रक्रिया को इस प्रकार निर्मित किया जा सकता है–

1. आप जो कर रहे हैं बालकों को उसका अवलोकन करने दें, ग़लतियां करे तो उसमें सुधार कर दो। बालक बार–बार भूल करे तो उससे लगातार उसी कार्य को दोहराने के लिए कहा जा सकता है यद्यपि यह स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि विद्यालय जाने से पूर्व ही बालक द्वारा जो ज्ञान अर्जित कर लिया गया है उसे देखते हुए यह एक उचित प्रक्रिया नहीं है। हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि बालक सभी वार्तालापों में भाग नहीं ले सकता है और उन सभी वाक्यों की रचना नहीं कर सकता है जो उसने किसी व्यक्ति को बोलते हुए सुने हैं या उस पर आधारित है। बालक ऐसे बहुत से वाक्य बोलता है जो इससे पहले उसने कभी नहीं बोले होते हैं। वे संदर्भ जिसमें सभी वाक्य बनाए गए हैं वे कभी उत्पन्न नहीं हो सकते थे। जबकि हम यह नहीं दिखा सकते हैं कि सीखने की इस प्रक्रिया वर्तमान अवस्था में मनुष्य द्वारा सीखने के बारे में हमारी समझ से पूरी तरह असम्बद्ध है। फिर भी यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की प्रक्रियाओं से बालक के ज्ञान का बहुत न्यून भाग ही प्रभावित किया जा सकता है। यदि हम बालक की योग्यता को उसे उसके चारों ओर वस्तुओं के

उपयोग और सभी प्रकार के कार्य जो वह करना चाहता है एवं करता है उसे संदर्भ में देखे तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह सब नक़ल अथवा अनुसरण नहीं है। यदि उसे रसोई से कुछ लाने के लिए कहा जाए और वह वस्तु उसकी पहुंच से अधिक ऊंचाई पर हो तो वह कुछ ऐसा खोजता है जिस पर खड़ा होकर उस वस्तु तक पहुंच जाए। इस संदर्भ में यह संभव नहीं कि उसने इसी उद्देश्य के लिए किसी को ऐसा करते हुए देखा हो।

बालक खोजना चाहता है

हम यह भी मानते हैं कि बालक लगातार कुछ भिन्न करना चाहता है। वह सदैव अपनी योग्यता की जांच और उसका फैलाव करना चाहता है। एक शिशु की भांति वह वस्तुओं को पकड़ना चाहता है, अपनी मांसपेशियों को दिखाना चाहता है और तब ऐसा करने के लिए वह धीरे से अपने अंगों और अपने–आप को हिलाता–डुलाता है। प्रायः सभी बच्चे भूमि पर घुटनों के बल चलना प्रारम्भ करते हैं जैसा कि उन्होंने कभी किसी वयस्क को करते हुए नहीं देखा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उनकी आन्तरिक इच्छा है कि वे अपनी क्षमता को और बढ़ाएं और अनुसंधान के लिए बड़े से बड़ा दायरा प्राप्त करें। आन्तरिक इच्छा इस प्रकार की ''जिद'' होती है। हम सभी ने बचपन में ऐसे कार्य किए हैं जो हमारे बड़े नहीं चाहते थे कि हम करें। वयस्क होने पर, वही सब कुछ हम बच्चों को करते हुए देखते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि वह जो करना चाहता है उसके लिए दृढ़प्रतिज्ञ है। वयस्क के रूप में हम अक्सर बच्चों में खोजने की मज़बूत और दृढ़–इच्छाशक्ति से आश्चर्यचकित हो जाते हैं। एक अन्य बात जो एक बालक में हमें स्वीकार करनी होगी वह है कार्यों को स्वयं करने की इच्छा। ज़्यादातर परिस्थितियों में हम वयस्क भी उन्हीं की तरह होते हैं और हम सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों को स्वयं करने की इच्छा रखते हैं। यह केवल परिणाम ही नहीं है जो कि महत्त्वपूर्ण है अपितु हमारी इसमें जो भूमिका है, वह महत्त्वपूर्ण है, और जहां तक बच्चे की बात है उसके लिए कोई बात अथवा कार्य न तो अधिक महत्त्वपूर्ण है न ही कम। आरम्भ से ही वह उन क्षमताओं को ग्रहण करने का प्रयास करता है जो वह अन्य लोगों में देखता है। बच्चा सीखना चाहता है कि कपड़े कैसे धोए जाते हैं, घर को कैसे साफ़ करते हैं, भोजन बनाने में कैसे सहायता की जा सकती है, विशेषकर उन वस्तुओं को कैसे उठाए जो टूट सकती हैं और वह उन सभी कार्यों को करता है। जिसके बारे में हम सोचते हैं कि उसे नहीं करना चाहिए क्योंकि वह बहुत छोटा है। स्वयं कार्य करने की इच्छा, स्वयं को व्यक्त करने की अभिलाषा और अपनी पहचान बनाने एवं प्रशंसा पाने की आकांक्षा में सभी क्षमताओं और ज्ञान प्राप्त करने की हमारी प्रक्रिया का एक अभिन्न पहलू है।

सीखनेवाले बालक की विशिष्टताएं

हम कह सकते हैं कि विश्व खोज की मानव अभिलाषा ही ज्ञानार्जन की प्रक्रिया का प्रमुख पक्ष है। इस खोज में वह संसार का अधिक से अधिक अनुभव प्राप्त करना चाहता है और इसके साथ अपने संबंधों को और विस्तृत करना चाहता है। उसके भीतर नवीन वस्तुओं का अनुभव करने, नए कार्य करने और चुनौतियों को समझने योग्य बनाने की क्षमता होती है।

दूसरा प्रमुख पक्ष है कार्यों को करने का दृढ़ निश्चय आसानी से हार नहीं मानना। एक बालक चलना सीखते समय तो खड़ा होने का प्रयास करता है और गिर जाता है परन्तु चलना नहीं त्यागता। जब बालक वार्तालाप करना सीखता है तो पाता है कि उसे कोई नहीं समझ रहा है, यद्यपि यह स्पष्ट नहीं कि वह कितना समझता है फिर वह लगातार सीखने की स्वयं को चुनौती देता रहता है। इसलिए मानव की यह एक महान् विशेषता है कि जिन चीज़ों को वे सीखना चाहते है उन्हें सीखने के लिए लगातार संघर्ष करना चाहते हैं।

तीसरी प्रमुख विशेषता है कि कार्यों को स्वयं करने एवं स्वयं ही सब कुछ अभिव्यक्त करने की इच्छा अथवा चाह। किसी कार्य का परिणाम बालक के लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना महत्त्वपूर्ण यह है कि इस प्रक्रिया में उसकी भूमिका क्या थी अथवा क्या होगी।

बालक की असीमित जिज्ञासा ज्ञानार्जन का चौथा पहलू है। क्या यह जिज्ञासा, जो हो रहा है इसके बारे में हो अथवा किसके लिए या

फिर क्यों हो रहा है इत्यादि के बारे में हो? ठीक बचपन से ही मानव अपने चारों ओर की स्थिति के विषय में सब कुछ जानने की इच्छा रखता है। वह संसार के साथ अधिक कुशलता से व्यवहार करने की क्षमता को प्राप्त करना चाहता है। इसलिए वह अत्यधिक जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा सम्भवतः एक ऐसा निहित गुण अथवा लक्षण है जिसकी परिणति खोजने की इच्छा और इसी के साथ कार्यों को स्वयं करने की इच्छा के रूप में होती है। यही वह अभिरुचि अथवा विशेषता है जो बालक को नए अनुभव कराती है एवं नवीन परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना करने एवं साहसी कृत्य करने के लिए उद्यत करती है। वह उन वस्तुओं को खोजने से भी नहीं डरता जो उसके माता–पिता नहीं खोजना चाहते और वह अपनी जिज्ञासा के अनुरूप दृढ़निश्चय और स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करता है।

इसके निहित प्रभाव

ये चार विशिष्टताएं वयस्कों के साथ उस तरह के पारस्परिक संबंधों की ओर संकेत करती हैं जिनसे बालकों को सीखने में सहायता मिलती है। इनके अंतर्गत बालक को खोजने, स्वयं कार्य करने, अपनी इच्छा और निश्चय को पहचानने और साथ ही अपनी योग्यता का असम्मान नहीं करने के संबंध में जागरूकता सम्मिलित है। इनमें यह तत्त्व भी निहित है कि वयस्कों को समझने की आवश्यकता है कि बालक अपने अनुभव को आत्मसात् करके और अधिक क्रिया करते हुए सीखेगा। वयस्क लोग बालक को ऐसा करने का अवसर प्रदान कर सकते हैं और यह सुनिश्चत कर सकते हैं कि बालक जो चुनौतियां और जोख़िम ले रहा है वे ख़तरनाक़ अथवा विपत्तिजनक तो नहीं हैं। परन्तु ऐसा करना कठिन होगा विशेषरूप से जब शारीरिक ख़तरे की बात हो। यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है परन्तु ऐसा करना कठिन होगा विशेषरूप से जब शारीरिक ख़तरे की बात हो। यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है किन्तु इस पर पृथक् चर्चा करने की आवश्यकता है और अब हम इस बिंदु पर ध्यान केन्द्रित करेंगे कि कक्षा में हम इस ज्ञान का उपयोग कैसे करते हैं।

कक्षाकक्ष एक ऐसा स्थान है जो घर से पूर्णतया अलग प्रकार का होता है और बालक जिस वातावरण में रहता है, उसमें अलग प्रकार का वातावरण होता है। इसके अंतर को रेखांकित करना आवश्यक है। कक्षाकक्ष एक ऐसा स्थान है जहां पर बच्चों के एक समूह के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है, एक ऐसे समूह के लिए जो आवश्यक नहीं है कि एक ही प्रकार की पृष्ठभूमि अथवा अनुभव का आधार रखता हो। ज्ञानार्जन से कुछ अपेक्षाएं होती हैं, जहां छात्र को पहुंचना होता है। अध्यापक प्रायः ऐसी पृष्ठभूमि से आते हैं जो बच्चों की भाषा और संस्कृति को समझ अथवा पहचान नहीं पाते हैं। बालक और उसके अध्यापक का संबंध घर में वयस्कों के साथ बालक के संबंध से पूर्णतया भिन्न प्रकार का होता है और उनकी भावनाएं भी भिन्न प्रकृति की होती हैं। विद्यालय में उपलब्ध समय बहुत ही सीमित होता है और जो अवसर होते हैं वे भी इसीलिए सीमित होते है। प्रत्येक बालक को अपनी इच्छानुसार इस पर अनुसंधान करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह क्या करना चाहता है और उस समय विशेष पर क्या कुछ सीखने के लिए वह इच्छुक है। इन विभिन्नताओं को समझना और महसूस करना होगा जिससे कि हम कक्षाकक्ष के संभावित निहितार्थ के बारे में विचार करने योग्य हो सकें और अब तक जो विचार विकसित हुए हैं उनके बारे में सोच सकें।

बालक में चार विशेष गुण होते हैं जो इस प्रकार हैं– (1) असीमित जिज्ञासा (2) स्वतंत्रता की ललक (3) अनुसंधान और प्रयोग करने की आवश्यकता और साथ ही (4) स्वयं कार्य करने की इच्छा। स्कूल में बच्चों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराने में ये चार गुण आधारभूत माने जाने चाहिए। इसके आधार पर वे विभिन्न स्थितियों में अपने आपको भिन्न तरीक़े से अभिव्यक्त कर पाएंगे।

बालकों के द्वारा भाषा सीखने के संदर्भ में हमें यह मानने की आवश्यकता है कि बालक के पास पहले से ही भाषा का उपयोग करने की बहुत क्षमता है। उसके पास एक विशाल शब्दकोश है और अपनी भाषा में रचना करने की योग्यता है और उस भाषा में वार्तालाप करने की क्षमता है। हमें यह भी मानना होगा कि कार्यों को स्वयं करने हेतु बालक को अवसर चाहिए अर्थात्

स्वयं के विचारों को व्यक्त करना, भाषा का अलग ढंग से प्रयोग करना और दृष्टिकोण के बचाव हेतु तर्क बनाना। अपने अध्यापक का मशीनीकृत रूप से नक़ल करना या अन्य दूसरे तरीक़े से नक़ल करना बालक की कुछ भी सहायता नहीं करता क्योंकि यह न तो बालक को चुनौती देता है और न ही उसे इसमें रुचि हो सकती है।

भाषा क्षमता के निर्माण हेतु इस बात को आश्वस्त करने की आवश्यकता है कि बालक अनेक प्रकार की स्थितियों का सामना करने में सक्षम हो सके। वह अधिक जटिल तर्कों का निर्माण कर सके, अधिक जटिल विचारों के साथ व्यवहार कर सके और संवाद को लम्बे समय तक चला सके, जिसमें कि अमूर्त विचार भी सम्मिलित हैं। अतः बच्चों के लिए यह सब प्राप्त कराने हेतु हमारी कक्षाकक्ष प्रक्रियाओं को उनके लिए आवश्यक स्थान एवं अवसर उपलब्ध कराने होंगे।

बच्चों की भाषाओं को स्वीकार करें

हमें यह मानना होगा कि जब बालक अपने चारों ओर की उन वस्तुओं के बारे में खोजबीन करता है जिन्हें वह जानता है और इसलिए उसके साथ अपनापन रखता है तो वह बहुत अच्छी तरह सीखता है। वाक्यों का निर्माण करने और नई प्रकार की स्थितियों में सहभागिता करने में उसे एक निश्चित मात्रा में आत्मविश्वास की और जिस भाषा का वह प्रयोग कर रहा है उसमें योग्यता की आवश्यकता होती है। यदि कक्षाकक्ष की भाषा का बच्चे की भाषा से कोई लेना–देना नहीं है और वहां की भाषा उन शब्दों पर आधारित नहीं हैं जिन्हें बच्चा जानता और समझता है तो ऐसा कोई तरीक़ा नहीं कि वह खोजबीन के लिए स्वयं में विश्वास महसूस कर सके और नई चुनौतियों को ले सके। एक विशेष योग्य ज्ञानार्जन प्रक्रिया के साथ आत्मविश्वासपूर्ण सहभागी के रूप में उसे एक कैचअप खेल खेलना होता है और वह भी बिना पर्याप्त अवसर और समय के।

कक्षा–कक्ष में सामान्यतः विभिन्न भाषाओंवाले बच्चे होते हैं। इसलिए अध्यापक के लिए एक प्रमुख सिद्धान्त का पालन करते हुए सभी बच्चों के लिए एक सम्पर्क भाषा की पहचान करनी होती है और उसे सीखना भी पड़ता है। कक्षा–कक्ष में संवाद उसी भाषा में करना होता है जिससे कि यह भाषा के उपयोग करने की योग्यता को सशक्त बना सके (तर्क, कल्पना, आत्मविश्वास, संप्रेषण, ज्ञान का विस्तार इत्यादि)। संप्रेषण की कमी को दूर करने का भार अध्यापक द्वारा ही उठाया जा सकता है।

बच्चों को उनको अपनी भाषा का उपयोग करने तथा कक्षा में उपस्थित सभी भाषाओं के साथ क्रीड़ा करने की अनुमति दी जानी चाहिए। वे स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं के शब्दों का उपयोग कर सकते हैं और इसके द्वारा संवाद कराने की श्रेष्ठतर योग्यता विकसित कर सकते हैं।

बच्चों के सम्मान और एक सकारात्मक आत्मछवि चाहिएः

एक बालक द्वारा आत्मविश्वास महसूस करने के संदर्भ में दूसरा अवश्यक बिन्दु है, सकारात्मक आत्मछवि। बालक की संस्कृति, भाषा तथा उसकी पहचान का सम्मान किया जाना चाहिए। जब इनका सम्मान होगा केवल तभी वह बालक स्वयं से खोजना सीख पाएगा और अपनी इच्छा और जिज्ञासा का अभ्यास कर पाएगा। इस बात में विश्वास के अभाव में कि वह जो कहता है अथवा महसूस करता है उसका सम्मान किया जाएगा, सीखने अथवा ज्ञानार्जन के कोई भी महत्त्वपूर्ण लक्षण उस बालक के व्यवहार में परिलक्षित नहीं होंगे।

इसके प्रभाव तथा परिणामों को समझने के लिए और कक्षा–कक्ष में क्या किया जा सकता है, इन संभावनाओं पर विचार कीजिये; बोर्ड पर एक वस्तु (अथवा किसी भी प्राणी) का चित्र बनाएं और फिर बच्चों से पूछिए कि वे इसे क्या नाम देंगे। बच्चों द्वारा सुझाए गए सभी नामों को बोर्ड पर लिखिये। इसके पश्चात् बच्चों से कहें कि वे अपनी स्वयं की भाषा में इस बारे में सभी तरह की बात करें कि इस चित्र के बारे में वे क्या जानते अथवा समझते हैं। यदि वक्ता स्वयं अन्य भाषा अथवा सम्पर्क भाषा धाराप्रवाह रूप से नहीं बोल सकता तो कक्षा में ऐसे बच्चे होंगे जो कि कही गई बात को समझा सकते हैं। फिर भी, यह एक स्पष्ट समझ होनी चाहिए कि जब तक चाहे बालक अपनी भाषा में ही

बोल पाए। ऐसे कई अभ्यास किए जा सकते हैं जिनके अन्तर्गत कारीगरों अथवा शिल्पियों के बारे में या फिर किसी घटना, कोई गतिविधि अथवा अन्य किसी विषय पर बात करके बोलने का अभ्यास किया जाए। उदाहरण के लिए कक्षा में किसी त्योहार अथवा किसी जानवर, कोई घटना इत्यादि के संबंध में वार्तालाप किया जाए। बच्चों को किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में वर्णन करने के लिए कहा जा सकता है जिसे वे पसन्द करते हैं अथवा उनके जीवन में आए एक ऐसे क्षण के बारे में जिसे वे सदा ही याद रखना चाहेंगे। हमें यह स्मरण रखना होगा कि भाषा मात्र शब्दों तथा वाक्य रचना से कहीं अधिक बड़ी है, यह हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व है, और इसलिए बच्चों को उसकी अपनी भाषा का प्रयोग करने हेतु प्रोत्साहन अथवा अनुमति देने का अर्थ है उसे स्वयं की अभिव्यक्ति की अनुमति देना और जैसा वह है उसी के अनुसार स्वयं को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करना।

पढ़ना और लिखना

ऐसे अवसरों के सृजन के अतिरिक्त, जहां कि बच्चे भाषाओं के संदर्भ में अन्वेषण कर सकें और भाषा के उपयोग की विभिन्न स्थितियों को समझने का प्रयास करने में अपने मस्तिष्क में अभ्यास कर सकें, एक अन्य आवश्यक बात जो स्कूल को करनी चाहिए वह यह है कि पढ़ने और लिखने में बच्चे की सहायता की जाए।

लिखने का अर्थ है स्वयं को अभिव्यक्त करना, जिसमें वार्तालाप में भाग लेने के बारे में जो कहा गया है उसमें से अधिकांश भाग लिखने के संबंध में भी ख़ास है फिर भी लेखन के बारे में बात कुछ अधिक है, बातचीत का कोई संदर्भ होता है, किन्तु लिखित भाषा बिना उस संदर्भ के होती है और इसमें अर्थ के सहयोग हेतु कोई लय भी नहीं होती और संदर्भ की अनुपस्थिति में उद्देश्यों, संबंधों तथा स्थितियों की दृष्टि से जिस बारे में बात की जा रही है उसमें कोई अन्तर्निहित संदर्भ नहीं होता। इसलिए यह दूरस्थ और अमूर्त है और अर्थ की सभी ठोस सहायताओं को स्वयं पाठ्यवस्तु में ही समाहित करती है। इसके अतिरिक्त एक लिखित पाठ्य होता है जिसके गूढ़ार्थ को समझना होता है।

बच्चे और उसके गुणों का सम्मान करने का सिद्धान्त लिखने के मामले में भी वैसे ही लागू होता है। तथापि गुण अपने आपको यहां अलग तरीक़े से प्रदर्शित करेंगे। बच्चे को लिखित सामग्री का उपयोग करते हुए अपने स्वयं के शब्दों में अपने विचारों को लिखने योग्य बनने की आवश्यकता है। इसलिए उसे एक लिपि के रूप में लिखने का यौगिक कार्य करने हेतु योग्य बनना होगा। ये दो कार्य अर्थात् स्क्रिप्ट को लिखना और अपने अनुभव, समझ, अपने तर्क और अपनी कल्पना का उपयोग करते हुए लिखने हेतु सार्थक विषयवस्तु खोजना, दोनों ही गंभीर और महत्त्वपूर्ण अथवा गंभीर प्रकृति का है। विषय वस्तु, स्क्रिप्ट लिखना सामान्य और यौगिक प्रक्रिया है। विश्वास विकसित करने और विचारों का लिपिबद्ध रूप में निर्माण करने के लिए उच्चस्तरीय क्रियाशीलता की आवश्यकता होती है और यह कार्य बहुत रुचिकर भी होता है। इस प्रयास और प्रक्रिया में, बालक को जिस चीज़ का अनुभव है, उस और जो कुछ लिखना है उसे वह अर्थपूर्ण और सहायतापूर्ण ढंग से उपयोग कर सके, यह अत्यावश्यक और महत्त्वपूर्ण क़दम होगा।

पढ़ना इसी प्रकार का अभ्यास है, इसका एक घटक गूढ़ार्थ को समझना और दूसरा है अर्थ बनाना।

गूढ़ार्थ को समझना एक महत्त्वपूर्ण क़दम है और दूसरे घटक की क्रिया को करने की दृष्टि से आवश्यक है किन्तु पढ़ने का उद्देश्य अधिक योग्य होता है। यहां भी बालक का ज्ञान बाहरी जगत् के लिए उपयोगी और आवश्यक हो सकता है। हम पहले ही उस ज्ञान की एक झलक देख चुके हैं जो बालक कक्षाकक्ष में लाता है और महसूस करता है कि वह ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, यदि आप गूढ़ार्थ को समझने में बालक की सहायता कर रहे हैं तो यह उपयुक्त होगा कि बच्चा जिन शब्दों को पहले से ही विश्वासपूर्वक जानता है, आप उन्हीं का प्रयोग करें। तत्पश्चात् बालक इन्हें स्वरशास्त्र के अनुसार विश्लेषित कर सकेगा और विशेष अथवा नियत ध्वनियों के साथ जुड़े प्रतीकों को पहचान सकेगा। यदि बालक 'अनार' को किसी अन्य नाम से जानता है तो इसे पहचानने और इसके विश्लेषण में सहायतार्थ 'ए' से 'अनार' के चित्र का उपयोग करने का कोई अर्थ नहीं रह जाता

है। हमें गूढ़ार्थ को समझने हेतु आरम्भिक अभ्यास के माध्यम से उन स्थितियों की सावधानीपूर्वक रचना करनी होगी जिसमें बालक उपयोग किए गए शब्दों और उनके अर्थ से ही अवगत नहीं होता अपितु वाक्य रचना से भी भलीभांति परिचित होता है। जो अर्थ बनाने में बालक की सहायता करते हैं वे उसके द्वारा उन नये तत्त्वों पर ध्यान एकाग्र करने में भी उसकी सहायता करते हैं जिन्हें उसे खोजना अथवा प्राप्त करना है। जिस बारे में बातचीत की जा रही है उसके संदर्भ में यदि बालक अवगत नहीं है फिर भी उससे अपेक्षा की जाती है कि वह शब्दों का विश्लेषण करेगा और इनके क्रम को प्रकट करेगा जिससे कि वह प्रयोग किये जाने को स्पष्ट कर सकेगा तो उसका कार्य बड़ा ही कठिन और दुरूह ही माना जाएगा। किसी पाठ्य सामग्री को समझना और उसमें यह निकालना कि यह क्या कहता है एक ऐसा अभ्यास है जिसके लिए समूची पाठ्य सामग्री के साथ जुड़ जाने योग्य बनने की आवश्यकता होती है। ध्वनि और प्रतीकों के संबंध को जानने के लिए बालक को पूरी की पूरी पाठ्य सामग्री का विश्लेषण करना होता है और इसके सभी अंशों को जानना होता है। गूढ़ार्थ के समझने का लिए ऐसा विश्लेषण अनिवार्य है जहां अभ्यास उद्देश्यहीन और जटिल अथवा अव्यावहारिक न होकर अर्थपूर्ण हो, इसके लिए बालक को पाठ्य सामग्री और इसके आसपास हो रही चर्चा या वार्तालाप को समझने में सक्षम होना होगा।

जिस बारे में वार्तालाप किया जा रहा है, उसके साथ संबंध स्थापित करने में इससे सहायता मिलेगी। यदि संदर्भ जाना पहचाना है तो इससे अर्थ बनाने में सहायता मिलेगी और अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा। इससे गूढ़ार्थ के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकेगा। यह विश्लेषण शब्दों के स्तर पर अथवा निर्माणकारी ध्वनियों के स्तर पर और कभी–कभी वर्णमाला के स्तर पर भी किया जा सकता है। यदि एक ऐसी पाठ्य सामग्री का विश्लेषण किया जा रहा है जिसे बालक शाब्दिक रूप से समझता है, जिसकी वाक्य रचना उसके लिए जानी पहचानी है। जिसका चित्र वह अपने मस्तिष्क में बनाने में सक्षम है, तो ऐसी स्थिति में गूढ़ार्थ को समझने का कार्य संभव हो जाता है। बोधगम्य और अर्थपूर्ण पाठ्य सामग्री बालक की रुचि को बनाए रखती है और इस पर काम करने का आकर्षण पैदा करती है। इसके अभाव में विश्लेषण अमूर्त, अव्यावहारिक और अर्थहीन हो जाता है। फिर भी यह स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि गूढ़ार्थ को समझने के कार्य की रचना इस प्रकार की जाए कि वह खोजने, अन्वेषण करने तथा जानकारी परस्पर बांटने के आनन्द के साथ करने योग्य एक अच्छी प्रक्रिया बन जाए।

अतः एक अध्यापक के लिए प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं –

- बालकों की भाषा प्रयोग करें;
- बालक जिस प्रकार अपने विचारों को व्यक्त करते हैं, उस तरीक़े का प्रयोग करें;
- उस संदर्भ का उपयोग करें जिसमें बालक रहते हैं अथवा जिसके साथ सम्पर्क रखना चाहते हैं और जिसका स्वप्न देखते हैं।

अध्यापक को अपने अध्यापन में भाषा संबधी पाठ्य सामग्री– मौखिक तथा लिखित, ऐसे वाक्य जिनसे बच्चे अवगत हैं और प्राथमिक स्वरूप से ऐसे शब्दोंवाले वाक्य जिन्हें वे जानते हैं, आदि को सम्मिलित करना चाहिए। बच्चों को खोज करने की अनुमति दीजिए, उन्हें विकल्प दीजिए उन्हें चीज़ें अपने आप करने दीजिए और साथ ही उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर पूछने और खोजने की अनुमति दीजिए। कुछ समय बाद, शब्दों और वाक्यों की संख्या सम्पर्क भाषा का निर्माण करना आरम्भ करती है और तत्पश्चात् पढ़ाई जानेवाली भाषा (आम तौर पर प्रान्तीय भाषाओं में से एक) के अन्तर्गत शब्दों और वाक्यों की संख्या को बढ़ाया जा सकता है। इस समायोजन की गति क्या हो, क्या यह भी मशीनीकृत ढंग से हो, यह सब कुछ एक परिभाषित परिधि के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। यह अध्यापक और बच्चों के मध्य पारस्परिक अन्तःक्रिया है और उन्हें ही इसके संतुलन के संबंध में निर्णय लेना होगा किन्तु वे सिद्धान्त जिन्हें इस अंतःक्रिया को संचालित करना चाहिए, उन्हें सदैव ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

हृदय कांत दीवान : विद्या भवन सोसायटी के शैक्षिक सलाहकार हैं। शिक्षा और समाज के मसलों पर लेखन करते हैं।

बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं
कुदरती जादू
या लंबा, लंबा सफर?

जीन आइचिसन

यह व्याख्यान भाषा के ज्ञान के निर्माण के बारे में है, और इस बारे में है कि क्या भाषा सीखना एक क़ुदरती जादू है या एक लंबा परिश्रम? ख़ैर, यह थोड़ा-थोड़ा दोनों है। ज़ाहिर है कि कुछ तो क़ुदरती यानी जन्मजात है अन्यथा गोल्डफिश भी बोलना सीख जाती। मगर सीखने की भी भूमिका है; बरसों बाद ही बच्चे दक्ष हो पाते हैं। मैं मुख्य रूप से प्रथम भाषा सीखने के बारे में बात कर रही हूं मगर थोड़ी बात दूसरी भाषा सीखने के बारे में भी।

सबसे पहले, कि भाषा में क़ुदरती रूप से निर्देशित सीखना शामिल होता है। इस तरह के सीखने में जंतु सहजवृत्ति से जानता है कि उसे किस बात पर ध्यान देना है, मगर बारीक़ियां सीखने में समय लगाना होता है। पक्षी और मधुमक्खियां और फूल इसके उम्दा उदाहरण हैं।

फूल एक-दूसरे से काफ़ी अलग होते हैं और मधुमक्खियां फूलों के बारे में जानते हुए पैदा नहीं होती, उन्हें सीखना होता है। उन्हें सहजवृत्ति से पता होता है कि उन्हें गंध, रंग और आकृति पर इसी क्रम में ध्यान देना है। इसलिए वे किसी बस स्टॉप या पोस्ट बॉक्स की ओर उड़ना सीखने की बजाय गुलाब तक उड़ना सीखती हैं जबकि कभी-कभी बस स्टॉप और पोस्ट बॉक्स भी चटख रंगों के होते हैं। इसी प्रकार से मानव शिशु भी क़ुदरती तौर पर लोगों के मुंह से निकलती ध्वनियों पर ध्यान देते हैं और उन्हें सहजवृत्ति से इनका अर्थ निकालना आता है। मगर इसमें लंबा समय लगता है।

पूर्व-भाषा - हम रोने के साथ शुरू करते हैं। शुरू में बच्चे सिर्फ़ रोते हैं। ऐसा कहते हैं कि बेंजामिन फ्रेंक्लिन ने (बच्चों के बारे में) कहा था, "एक सिरे पर ज़ोरदार आवाज़ और दूसरे पर ज़िम्मेदारी का कोई एहसास नहीं"। सारी भाषाओं में एक ही तरह का रोना देखा जा सकता है। कोई भारतीय मां और कोई अंग्रेज़ी मां खुद अपने और एक-दूसरे के बच्चे का रोना पहचान जाएंगी। इसके बाद बच्चे गूं-गूं करते हैं, यह क़रीब 6 सप्ताह में आता है। और इसके बाद क़रीब छह माह पर वे बेबल करते हैं, मम्मा जैसी आवाज़ें दोहराते रहते हैं। माता-पिता कई बार मान लेते हैं कि उनके बच्चे उन्हें पुकार रहे हैं, हालांकि अपने होंठों के साथ प्रयोग करते हुए यही आवाज़ें निकालना उनके लिए सबसे आसान होता है। अब हम उतार-चढ़ाव पर आते हैं, जो क़रीब 8 माह में आता है। बच्चों की आवाज़ ऐसी लगती है जैसे वे बातें कर रहे हैं, मगर वे तो सिर्फ़ सुनी हुई भाषा की लय की नक़ल कर रहे हैं।

हमें दो शुरुआती भाषाएं मिलती हैं। एकल-शब्द-उद्गार क़रीब 12 माह में आता है। जैसे अंग्रेज़ी में बच्चे अक्सर 'du' कहते हैं जिसका मतलब होता है juice। दो शब्दों के उद्गार क़रीब 18 माह में आते हैं - जैसे more du मतलब more juice। where daddy जैसे सवाल और no bed जैसे नकारात्मक वाक्य क़रीब दो वर्ष में आते हैं।

अब हम आगे के मुक़ाम पर पहुंचते हैं। खण्ड चार के तहत हम देखते हैं कि लंबे वाक्य क़रीब 3 वर्ष की उम्र में आते हैं मगर थोड़ा सावधानी से छानबीन करने पर पता चलता है कि इस समय तक बच्चे कहीं अधिक जानते हैं। 10 वर्ष की उम्र तक सारी प्रमुख संरचनाएं तैयार हो जाती हैं, काफ़ी जटिल संरचनाएं भी। मगर सीखने का एक पक्ष आजीवन जारी रहता है - शब्द सीखना, शब्द भंडार का अर्जन।

तो अब हम बात करते हैंः शब्द सामर्थ्य की। बच्चे बहुत छोटी उम्र से ही कई शब्द समझते हैं; मेरा भतीजा, जब उसके माता-पिता कहते कि 'मुझे बाघ दिखाओ' तो वह अपने पालने के ऊपर लगे चित्र में काफ़ी विश्वसनीय ढंग से बाघ की ओर इशारा कर सकता था मगर उसके लिए यह एक खेल भर था। जब उसके माता-पिता बाघ शब्द बोलते तो उसे पता था कि पट्टेवाले जानवर की ओर इशारा करना है। उसे शायद यह पता नहीं था कि यह उस जानवर का नाम है जिसकी ओर वह इशारा कर रहा है। किसी अवस्था में बच्चे नामों की ताक़त समझ जाते हैं, वे नामकरण समझ नामक कोई चीज़ हासिल कर लेते हैं यानी यह समझ कि चीज़ों के नाम होते हैं, वे इस मक़ाम पर दूसरे साल में, आम तौर पर 15 से 18 माह की उम्र में पहुंचते हैं। इसके बाद वे हर चीज़ को नाम देते हैं। अब ज़ाहिर है हम घुटने चलते बच्चों से इसकी बात नहीं कर सकते, मगर बधिर बच्चों के अनुभव से इस मुक़ाम के बारे में काफ़ी कुछ जानते हैं जो नामकरण समझ के पड़ाव पर देर से पहुंचते हैं।

हाल का एक मामला एक बधिर मेक्सिकन अल डेफांसो का है, जिसने नामकरण समझ खोज ली थी जबकि उसे बताया नहीं गया था।। उसने इसकी खोज चरणों में की थी, सबसे पहले संख्याएं, फिर संज्ञाएं और फिर क्रियाएं। अब सब लोग सहमत हैं कि क़रीब 18 माह की उम्र में शब्द उफान आता है, जब लगता है कि बच्चे शब्द सोखते जाते हैं। दो वर्ष की उम्र तक आम तौर पर बच्चे कई सैकड़ा शब्द जानते हैं, और बड़े लोगों के समान बोलते हैं जबकि वे अभी बड़े नहीं हुए हैं, और तीन वर्ष की उम्र तक हज़ार से ज़्यादा शब्द जानते हैं। बच्चों के पास सक्रिय शब्द भंडार क़रीब 3000 शब्दों का होता है, अक्रिय शब्द भंडार (जिन्हें वे समझते हैं) संभवतः इससे काफ़ी ज़्यादा, अनुमानित 10000 शब्दों का, हो सकता है। शब्द खोज क़रीब 13 वर्ष की उम्र में होती है। मैंने एक शोधकर्ता एन कोपेल के साथ 11-14 वर्ष के ब्रिटिश बच्चों के शब्द भंडार का एक सर्वेक्षण किया था। हमने 400 बच्चों की जांच की थी, दो स्कूलों के 200-200 बच्चे थे और हमने देखा कि 11 और 12 वर्षीय बच्चे एक समूह में रहे और 13-14 वर्षीय बच्चे दूसरे समूह में। अधिकांश ब्रिटिश बच्चों ने 13 वर्ष की उम्र तक 20,000 शब्द हासिल कर लिए थे। यह संख्या याद रखें 20,000। 20,000 शब्द वह क्रान्तिक मात्रा है जो धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलने के लिए चाहिए। मैंने पाया कि विदेशी छात्र, जिनमें से कुछ का परीक्षण मैंने किया था (कुछ भारतीय भी थे), जो इस मात्रा तक पहुंच गए थे वे किसी भी विषय के बारे में दक्षतापूर्वक बात कर सकते थे। और 20,000 से कम शब्दवालों को जूझना पड़ता था। औसत ब्रिटिश भाषी वयस्क 50,000 शब्द जानता है। तुलना के लिए देखें कि कॉन्साइस ऑक्सफर्ड डिक्शनरी का दावा है कि उसमें 75,000 शब्द हैं। तो एक औसत ब्रिटिश वयस्क दो-तिहाई कॉन्साइस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी जानता है। मगर कोई इससे पीछे भी है तो चिंता नहीं क्योंकि शब्द सीखना आजीवन चलता है।

अब मैं - भाषा और बुद्धिमत्ता का पृथक्करण। भाषा, यानी बोलने की क्षमता, आश्चर्यजनक रूप से आम बुद्धिमत्ता से अलग है। आम तौर पर भाषा और बुद्धि साथ-साथ आगे बढ़ते हैं, मगर ऐसे कई विचित्र मगर मेधावी इन्सान हैं जिनमें भाषा और बुद्धि अलग-अलग होते हैं। पहली है एक महिला लौरा, कभी-कभी मार्था। लौरा व्याकरण की दृष्टि से नफ़ीस वाक्यों का उपयोग करती थी मगर अक्सर इनका कुछ मतलब नहीं होता था, जैसे - "पिछले वर्ष मैं 16 वर्ष की थी, और अब मैं इस साल 19 वर्ष की हूं"; और यह मेरा प्रिय वाक्य है - "वह सोच रही थी कि यह कोई आम स्कूल नहीं है, यह तो बस अच्छा सा पुराने क़िस्म का था, कोई बसें नहीं और मुझे यह बिलकुल अच्छा नहीं लगता कि वह मेरे मुंह में पेपर टॉवेल डाले।" लौरा सीखे हुए वाक्यों के टुकड़े नहीं दोहरा रही थी, क्योंकि वह व्याकरण की ग़लतियां भी करती थी। जैसे, "These are two glasses I have taken, it was given by a friend, I don't know how I catched it." एक और उदाहरण क्रिस्टोफर का है जिसकी भाषा व बुद्धि अलग-अलग हो गए थे। वह गंभीर मानसिक अपंगता से पीड़ित है। वह अपनी देखभाल नहीं कर पाता, मगर भाषा सीखने में खासा हुनर रखता है। जब वह 29 वर्ष का था, उसने स्वीडिश से यह तर्जुमा किया था - "Mia is sitting crouched in the kitchen sofa, with her knees bent and her feet tied up in lovely night shirt, the cat spins in her knee." यह एकदम सही अनुवाद था। "Mia is crouched up on the kitchen sofa, with her knees drawn out and her feet tucked into her stripy nightie, the cat is purring into her knee." भी वही अनुवाद है जो क्रिस्टोफर का था मगर क्रिस्टोफर ने purr शब्द को स्वीडिश के शब्द spin शब्द से भ्रमित कर दिया था जो purr जैसा ही लगता है। और एक और क़िस्म का बच्चा है, जो बच्चे विलियम सिंड्रोम से पीड़ित हैं वे विशेष कार्यों से नहीं निपट पाते, जैसे, वे एक सायकल के पुर्ज़ों को जोड़कर पूरी सायकल नहीं बना पाते। मगर उनकी भाषा काफ़ी नफ़ीस और विस्तृत होती है। उदाहरण के लिए 17 वर्ष के एक बच्चे द्वारा दिया गया ब्रेन स्कैन का विवरण देखिए - "एक बड़ी चुंबकीय मशीन होती है, उसने भेजे के अंदर का चित्र खींचा। आप बात कर सकते हैं मगर अपना सिर नहीं घुमा सकते क्योंकि उससे पूरी चीज़ बरबाद हो जाएगी और उन्हें फिर से शुरू करना पड़ेगा। यह सब होने के बाद, वे आपको आपका भेजा एक कंप्यूटर पर दिखाते हैं और वे देखते हैं कि वह कितना बड़ा है।"

अब मैं उन तथ्यों की चर्चा करना चाहती हूं कि इन्सान जैविक रूप से, शारीरिक व मानसिक दोनों तरह से, भाषा के लिए ढले हैं। शारीरिक स्तर पर जीभ मांसल और गतिशील है। वह कुत्ते जैसे अन्य जानवरों की तरह सुस्त नहीं है। इन्सान

की जीभ उपयोगी है; यह न सिर्फ़ मुंह के हर हिस्से से भोजन को बटोर सकती है, बल्कि विभिन्न क़िस्म की आवाज़ें निकाल सकती है। इन्सान के दांत एक बराबर होते हैं, और हालांकि शायद यह भोजन खाने के लिहाज़ से बहुत बढ़िया न हो, मगर इसकी बदौलत मुंह में एक उपयोगी पर्दा बनाने में मदद मिलती है जिसके द्वारा [t, s, z, l] जैसी आवाज़ें उच्चारित की जा सकती हैं। बोलते समय फेफड़े सांस को जल्दी-जल्दी खींचने और धीरे-धीरे छोड़ने में मददगार होते हैं।

यह अनुकूलन असाधारण है क्योंकि अधिकांश मामलों में श्वसन को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। मगर इन्सान बग़ैर परेशानी घण्टों बोल सकते हैं; उन्हें सांस लेने में दिक़्क़त की नहीं, गला दुखने की संभावना ज़्यादा है। हमारे स्वर रज्जु गले में झिल्लियों की पतली-पतली पट्टियां हैं, जो मूलतः (और आज भी) फेफड़ों को बंद करके पसलियों के पिंजर को सख़्त बनाने में उपयोगी हैं जो भारी बोझ उठाने या पेड़ों पर झूलने जैसे मेहनत के काम में ज़रूरी होता है।

किसी चिंपैंज़ी के सिर और इन्सान के सिर में अंतर पर ग़ौर कीजिए। इन्सान नाक की गुहा को बंद कर सकते हैं और पहचानने योग्य आवाज़ें पैदा कर सकते हैं, ख़ास तौर से तीन एंकर स्वर [i, u, a]। और जब एक बार हम ये तीन स्वर बोल पाएं, तो यह भाषा की हमारी उड़ान की कुंजियों में से एक थी। अब मैं 50-75 हज़ार साल पहले की बात कर रही हूं। अब, हमारे मानव मस्तिष्क भाषा के लिए विशेषीकृत हो गए हैं। हमारे दिमाग चिम्पैंज़ी से बड़े हैं, ख़ास तौर से अगला हिस्सा, मगर वास्तव में साइज़ की बजाय गुणवत्ता का ज़्यादा महत्त्व है। अधिकांश इन्सानों में बाएं गोलार्ध का उपयोग भाषा के लिए होता है। अधिकांश इन्सान दाएं हाथ से काम करने में दक्ष होते हैं और इनमें से 90 प्रतिशत में भाषा बाएं गोलार्ध या भेजे के बाएं हिस्से में होती है। वामहस्त लोग, जो अपेक्षाकृत बिरले होते हैं, में से भी अधिकांश में भाषा मुख्यतः बाएं गोलार्ध में होती है। ये आंकड़े तंत्रिकाविज्ञान की एक किताब से हैं जो बताते हैं कि 90 प्रतिशत दक्षिणहस्त लोगों में और अधिकांश वामहस्त लोगों में भी भाषा बाएं गोलार्ध में होती है। एक जीववैज्ञानिक एरिक लेनबर्ग ने 1967 में एक महत्त्वपूर्ण किताब लिखी थी जिसका नाम था *दी बायोलॉजिकल बेसिस ऑफ लैंग्वेज*। उन्होंने बताया था कि भाषा एक परिपक्वता नियंत्रित व्यवहार है, यानी चलना सीखने या यौन व्यवहार के समान एक व्यवहार जिसमें व्यवहार के विभिन्न पहलू व्यक्ति के जीवन के अलग-अलग मुक़ामों पर क़ुदरती रूप से विकसित होते हैं, बशर्ते कि आसपास के परिवेश में पर्याप्त उद्दीपन मौजूद हो। उन्होंने इस तरह के व्यवहार को पहचानने के लिए कुछ प्रमुख बिंदु बताए थेः

1. परिपक्वता नियंत्रित व्यवहार उसकी ज़रूरत होने से पहले उभरता है।

2. यह किसी बाह्य घटना से प्रेरित होकर शुरू नहीं होता। जब बच्चों को बोलना होता है तब माता-पिता उन्हें अचानक सिर के बल नहीं पटकते।

3. यह किसी सचेत निर्णय का परिणाम नहीं होता।

4. प्रत्यक्ष शिक्षण का असर अपेक्षाकृत कम होता है। और

5. पड़ावों का एक नियमित क्रम होता है।

1967 की अपनी किताब में लेनेबर्ग ने दलील दी थी कि एक तयशुदा निर्णायक अवधि होती है जिसके दौरान भाषा अर्जन संभव है। उन्होंने दावा किया था कि यह (अवधि) क़रीब दो वर्ष की उम्र में शुरू होती है और किशोरावस्था में समाप्त हो जाती है। इसके बाद, उनके मुताबिक़, "भाषा अर्जन नामुमक़िन है"। मगर इस कठोर निर्णायक अवधि के बारे में वे ग़लत थे। वे दो लिहाज़ से गलत थे। पहला कि बच्चे दो वर्ष की उम्र से पहले बड़ी मात्रा में भाषा अर्जित करते हैं। दो वर्ष से कम उम्र में बाएं गोलार्ध में गंभीर क्षति होने पर भाषा सम्बंधी स्थायी क्षति हो सकती है। दूसरा, पार्श्वीकरण (यानी भाषा का विशेषीकरण बाएं गोलार्ध में होना) बहुत कम उम्र के शिशुओं में देखा गया है। अर्थात् यदि उनके सामने भाषा की ध्वनियां बजाई जाएं, तो वे बाएं गोलार्ध से ध्यान देते हैं। यह बात काफ़ी विस्तृत प्रयोगों से पता चली है। और यह

भी काफ़ी महत्तपूर्ण है कि नवजात शिशु भी खुद अपनी भाषा पर ज़्यादा ध्यान देते हैं, जिससे पता चलता है कि वे कोख में ही इसकी लय के प्रति अनुकूलित हो चुके होते हैं। और लेनेबर्ग की सोच के विपरीत, किशोरावस्था किसी बिंदु पर यकायक शुरू नहीं होती। भाषा अर्जन 13 वर्ष की उम्र के बाद भी चलता रह सकता है। अधिक उम्र के कुछ लोग भी भाषा सीखने में बढ़िया होते हैं। एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि शब्द भंडार का निर्माण तो ताज़िन्दगी चलता रहता है। लोग अपना शब्द भंडार (यदि संभव हुआ हो तो) 100 वर्ष की उम्र तक बढ़ाते रह सकते हैं। और यह भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण है कि शब्द भंडार का निर्माण क़रीब 13 वर्ष की उम्र में शिखर पर होता है। तो शोधकर्ता आजकल क्रान्तिक अवधि की बजाय संवेदी अवधि की बात करते हैं, वह समय जिसमें बच्चों का संपर्क भाषा से कराया जाना चाहिए, मगर यह अवधि लेनेबर्ग ने जो सोचा था उससे काफ़ी पहले शुरू हो जाती है और देर तक जारी रहती है। तो मूलतः लोग मानते हैं कि अवसरों की खिड़की ज़्यादा लंबे समय तक खुली रहती है और अपेक्षाकृत धीरे-धीरे बंद होती है। और, उदाहरण के लिए जो परिवार कनाडा प्रवास कर गए हैं, उन्होंने देखा है कि उनके बच्चे वो फ्रांसिसी सीख लेते हैं जो फ्रांसिसी कनाडावासी बोलते हैं। प्रवास के समय बच्चे जितने छोटे होते हैं, उतनी ही आसानी से वे फ्रांसिसी सीखते हैं। जैसा कि हम आज जानते हैं, यह संवेदी अवधि बदलती संवेदनाओं का दौर होता है। बहुत छोटे बच्चे अपनी भाषा की ध्वनि संरचना सीखने में बहुत तेज़ होते हैं। बड़े बच्चे व्याकरण की संरचना पर ध्यान देते हैं। किशोर बच्चे शब्द भंडार पर ध्यान देते हैं। बड़े बच्चे वास्तव में भाषा अर्जित करने के लिए तैयार नहीं होते। इसमें कोई संदेह नहीं कि जो लोग बच्चों की देखभाल करते हैं वे इसमें सहायक या बाधक हो सकते हैं। एक समय था जब बच्चों से बोलने की बोली के लिए मदरीज़ शब्द का प्रयोग होता था। मगर अब हम इस शब्द का उपयोग ज़्यादा नहीं करते क्योंकि सिर्फ़ मां ही बच्चों की देखभाल नहीं करती। पिता, रिश्तेदार और दोस्त भी करते हैं। तो आजकल प्रचलित शब्द देखभालकर्ता है, यानी जो भी देखभाल करे। और हम देखभालकर्ताओं और बाल-संबोधित बोली (child directed speech - CDS) की बात करते हैं। अब यह पता चला है कि लोग जो बातें प्रथम भाषा के देखभालकर्ताओं और सीडीएस के बारे में कहते हैं वे काफ़ी हद तक द्वितीय भाषा सीखनेवालों पर भी लागू होती हैं। अब, सबसे पहले तो सीधे बच्चे से बात करना आवश्यक है। इसमें कुछ मतलब नहीं है कि बच्चे को टीवी के सामने पटक दें और उम्मीद करें वह अंग्रेज़ी सीख जाएगा, वह नहीं सीखेगा। विन्सेन्ट नाम के बच्चे का एक बहुत दिलचस्प मामला हुआ था, जिसके माता-पिता बधिर थे। वे चाहते थे कि विन्सेन्ट न सिर्फ़ उनकी भाषा - संकेत भाषा - सीखे बल्कि अंग्रेज़ी भी सीखे। तो वे उसे टीवी के सामने बैठा दिया करते थे, मगर विन्सेन्ट ने कुछ अंग्रेज़ी नहीं सीखी। तो, कुल मिलाकर, जी हां, आपको बच्चे से बातचीत करनी चाहिए, मगर सही ढंग से। सबसे पहले तो बच्चों (या किसी भी सीखनेवाले) को आलोचना की शैली में, खुले आम या दबे-छुपे, टोकना नहीं चाहिए। अर्थात् आप यह कभी न कहें, "नहीं, यह ग़लत है।" इस ढंग का भूल सुधार बच्चे को अवरुद्ध कर सकता है, ख़ास तौर से यदि देखभालकर्ता आलोचना का स्वर अख़्तियार कर ले। वास्तव में जितना कहा जाता है, बच्चे उससे अधिक देखते हैं। और वे यह समझ जाते हैं कि उनका तिरस्कार किया जा रहा है। यह बात द्वितीय भाषा सीख रहे बड़े बच्चों के लिए भी सही है। तो भूल सुधार, ख़ास तौर से यदि आलोचना की शैली में किया जाए, तो बाधक बन सकता है। फिर बच्चे अक्सर इस बात पर ध्यान नहीं देते कि किस चीज़ को सुधारा जा रहा है। वे तो बस इतना जानते हैं कि उन्हें कोई पसंद नहीं करता या कोई उनकी तारीफ़ नहीं करता और हो सकता है कि वे इसे देखे नहीं या इसकी परवाह न करें। इसके अलावा, माता-पिता जिन चीज़ों में सुधार करते हैं उसमें एकरूपता नहीं रहती। और अक्सर वे भाषा की ग़लतियों की बजाय तथ्य को सुधारने की कोशिश करते हैं।

जैसे जब बच्चे ने कहा कि "teddy sock on" (जब टेडी ने ज़ुराबें पहनी हुई थीं) तो हो सकता है कि उसके पालक कहें "Good! That's right. Teddy's got a sock on"। मगर यदि बच्चे ने व्याकरण के लिहाज़ से सही कहा कि "Teddy's got his sock on" जबकि टेडी ने ज़ुराबें नहीं पहनी हुई हैं, तब शायद पालक कहेंगे "No, you are wrong. Teddy is not wearing a sock"। संक्षेप में, जैसा कि रॉजर ब्राउन ने कभी कहा था, "यदि भूल सुधार उसी ढंग से काम

भारतीय बच्चों द्वारा अंग्रेज़ी सीखने के बारे में प्रभु की एक महत्त्वपूर्ण किताब है, और रमाकांत अग्निहोत्री ने भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण काम किया है।

करता हो जैसा पालक सोचते हैं, तो उम्मीद की जानी चाहिए कि बच्चे सत्य को व्याकरण-विरुद्ध बोलते बड़े होंगे।''

दरअसल, मामला उल्टा लगता है। अब कई लोगों ने हाल में भूल सुधार पर अनुसंधान किया है और दर्शाया है कि यह कभी-कभी कारगर होता है, बशर्ते कि बच्चा उस समय भाषा के उस पहलू पर काम कर रहा हो और यदि यह दोस्ताना अंदाज़ में किया जाए। किसी भी समय बच्चे भाषा के किसी पहलू पर चुनिंदा ढंग से ध्यान देते हैं और यही बात द्वितीय भाषा सीखनेवालों पर भी लागू होती है। जैसे एलेक्स के उदाहरण को देखिए:

किसी समय एलेक्स भूतकाल के प्रति ख़ास तौर से सजग था। उसने कहा, ''The crocodile bitted the giraffe's feet''। पिता ने कहा, 'He bit his feet'' और एलेक्स ने कहा, ''Yes, and he bite me too.'' इससे पता चलता है कि बच्चे ने भूतकाल पर ध्यान दिया था। मगर हम इतना जानते हैं कि पालकों और शिक्षकों को चाहिए कि वे सीखनेवाले के लिए संशोधन हेतु एक बढ़िया आधार मुहैया करवाएं। उन्हें चाहिए कि वे धीमे, सुस्पष्ट, उतार-चढ़ाव को बढ़ा-चढ़ाकर, छोटे-छोटे, सुगठित कथन दें। इसमें दोहराव होना चाहिए मगर यह सीधी पुनरावृत्ति न हो और इसमें व्याकरण की विविधता होनी चाहिए। जैसे आप बच्चे को कह सकते हैं,''It's breakfast time. Shall we make some toast? You must be hungry. Why do you want to drink? Some orange?'' वैसे भी मात्र बोलना महत्त्वपूर्ण नहीं है, बच्चों या सीखनेवालों को यह महसूस भी होना चाहिए कि वे एक वयस्क के साथ एक संयुक्त उद्यम में शामिल हैं।

उदाहरण के लिए, ''Shall we go and feed the rabbits now? The rabbits must be getting hungry. They want their dinner, shall we give them some cabbage leaves? They like cabbage leaves, don't they?''

द्वितीय भाषा सीख रहे बड़े बच्चों के साथ संयुक्त उद्यम मुश्किल ज़रूर है मगर नामुमक़िन नहीं है। यह मुमक़िन है, बशर्ते कि आप उन्हें कुछ करने को दें, जैसे, इंग्लैण्ड या अमेरिका का नक़्शा बनाकर उसमें लंदन या न्यूयॉर्क दर्शाने या भारत में दिल्ली और मुंबई को सही जगह पर रखने को कहें।

बच्चे कंप्यूटर्स से भी शुरुआत कर सकते हैं, अंततः उन्हें जिन प्रोग्राम्स से काम करना है उनकी बनिस्बत सरल प्रोग्राम्स से शुरू कर सकते हैं। इंग्लैण्ड में जब हम कंप्यूटर चालू करते हैं तो बूटिंग अप कहते हैं। अमरीकी लोग बूटस्ट्रैपिंग की बात करते हैं। तो बच्चे में बूटस्ट्रैपिंग कैसे काम करेगा? शुरू में बच्चा एक सरल परिकल्पना बनाएगा, कि हर वाक्य डैडी, मम्मी, डैडी गो जैसे शब्दों से शुरू होता है। फिर उसके बाद कार या कप या गर्ल जैसा कोई शब्द आएगा, जैसे डैडी कार, मम्मी कप, डैडी गो। फिर वह शायद यह समझ पाए कि इन उद्‌गारों में अंतर थे और सोचने लगे कि ऐसा क्यों है और इससे उसकी कही बात पर क्या असर पड़ा। और अंत में वे समझ पाएंगे कि वाक्य अलग-अलग तरह के वैयाकरणिक सम्बंध व्यक्त करते हैं। आम तौर पर हम जानते हैं कि जब बच्चे भाषा के किसी पहलू पर लगे होते हैं, तो वे सुनने की कोशिश करते हैं, इन्तज़ार करते हैं, जोड़-तोड़ करते हैं, और फिर पुष्टि करने के लिए सुनते हैं। यों कहें कि सबसे पहले वे सुनते हैं, बोलने की कोशिश करने से पहले वे अपनी भाषा के बारे में काफ़ी कुछ सीखते हैं। फिर वे आज़माइशी तौर पर प्रयोग करते हैं। (और हां, कभी-कभी द्वितीय भाषा सीखनेवालों को काफ़ी अधिक अंग्रेज़ी सुनने की ज़रूरत पड़ती है, इससे पहले कि वे बोलने को विवश हों।)

भाषा अर्जित करने के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चे और वयस्क सह-घटना (शब्द और संरचनाएं जो एक के बाद एक आती हैं) के प्रति विशेष रूप से सजग होते हैं। इसी ढंग से एक अंधी बच्ची सैली ने look और see के बीच अंतर सीखा था और वह अपनी भाषा में देखनेवाले बच्चों से थोड़ी ही पीछे थी। जैसे ''Look, here's how you wind the clock'' और ''Come and see the kitty.'' तो ज़ाहिर है कि जो शब्द वह सीख रही थी, उसने उसके दोनों ओर के शब्दों पर ध्यान दिया था। और यह सबसे महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे (और द्वितीय भाषा सीखने वाले भी) वास्तव में चीज़ों को संदर्भ में ही सीखते हैं।

अब तक मैंने मुख्य रूप से यह बात की कि बच्चे आगे कैसे बढ़ते हैं, मगर वे अपनी ग़लतियों को पहचानकर पीछे भी चलते हैं। और किसी को पक्का पता नहीं है कि वे ऐसा कैसे करते हैं, सिवाय इसके कि यदि आप उनसे धीमे-धीमे और स्पष्ट रूप में बात करते रहें तो वे पीछे देखते हैं। मैंने खण्ड बारह - रीट्रीटिंग - में कुछ सिद्धांत लिखे हैं और शायद असंगतियों को पकड़ना सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। बच्चे देखते हैं कि उनका बोलना पालकों से थोड़ा अलग है और फिर वे बदलाव कर लेते हैं।

मैंने विविधता के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कहा है। बच्चों का भाषा सीखना कई मायनों में सामान्य रूपरेखा में एक समान है। मगर व्यक्तियों के बीच विविधता तो होती है। कुछ बच्चे शब्दों के बारे में जानना चाहते हैं, कुछ बच्चे संरचनाओं के बारे में जानना चाहते हैं। दूसरा, भाषाओं के बीच विविधता होती है और लगता है कि भाषा के अलग-अलग प्रकार सीखनेवालों में अलग-अलग रणनीतियों को बढ़ावा देते हैं। तीसरा, बेशुमार बच्चे द्विभाषा-भाषी और त्रिभाषा-भाषी बनते हैं। यह किसी भी बच्चे के लिए काफ़ी फ़ायदेमंद होता है। उनके पालक कभी-कभी चिंतित हो जाते हैं क्योंकि शुरू-शुरू में एक भाषा-भाषी परिवार की अपेक्षा ऐसा बच्चा भाषा में धीमे आगे बढ़ता नज़र आता है। मगर यह अस्थायी होता है। अंततः बच्चा दोनों भाषाएं अर्जित कर लेता है, हालांकि इससे कभी-कभी मदद मिलती है यदि एक पालक निरंतर एक ही भाषा बोले। यानी यदि बच्चे को पता हो कि उसकी मां अंग्रेज़ी बोलेगी और पिता स्पैनिश बोलेंगे तो शायद मदद मिलेगी।

बहरहाल, मैं आख़री बात पर आती हूं। मैंने सिर्फ़ भाषा की संरचना पर बात ही की है। मैंने उस आम अंतःक्रिया की बात नहीं की जिसे भी सीखना होता है, जैसा कि निम्न कार्टून ृंखला में दिखता हैः

साफ़ है कि इस बच्चे ने टेलीफोन को संभालना नहीं सीखा है। टेलीफोन बजता है। बच्चा उसे उठाकर कहता है "हैलो"। दूसरे छोर की आवाज़ कहती है "क्या मैं तुम्हारे पिताजी से बात कर सकता हूं", बच्चा कहता है, "ऊंह, मुझसे पूछने की ज़रूरत नहीं है।"

विद्या भवन सोसायटी प्रकाशित **ज्ञान का निर्माण** से साभार। जीन आइचिसन आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भाषावैज्ञानिक। द्वारा भावानुवाद– सुशील जोशी, एकलव्य की स्रोत फीचर सेवा के संपादक हैं। विज्ञान एवं शिक्षा में निरंतर लेखन करते हैं।

भाषा : पहचान व अस्मिता

सामाजिक दर्जा किसी भी व्यक्ति जैसे– पादरी, एक अधिकारी, एक पत्नी या पति के समाज में स्थान को दिखाता है। सामाजिक भूमिका मान्य व्यवहार है, जिनकी अपेक्षा समाज हर उस व्यक्ति से करता है, जो उस पद पर हो। राजकीय भूमिकाओं के साथ अक्सर विशेष औपचारिक चिह्न जुड़े रहते हैं जैसे की वर्दी। परन्तु सामाजिक दर्जे के प्रमुख चिह्नों में से एक, बेशक भाषा है। हर व्यक्ति कई भूमिकाएं अदा करता है, उसकी कई पहचान होती हैं। एक घर में (जैसे परिवार का मुखिया, सबसे बड़ा पुत्र या पुत्री आदि), इसी तरह से कार्य स्थल में भी एक और भूमिका होती है (जैसे सुपरवाइजर, शागिर्द आदि)। इसी तरह चर्च में, स्थानीय खेलकूद केन्द्र में और ऐसे ही और भी कई। हर भूमिका के साथ पुकारे जाने की एक

ख़ास भाषाई शब्दावली जुड़ी है, एक औपचारिक ढंग है और एक विशिष्ट शब्दावली। अपने जीवन में हर व्यक्ति बहुत से ऐसे व्यवहार सीखता है।

ऐसा कभी–कभी ही होता है कि एक ख़ास सामाजिक भूमिका अपनाने के लिए बिल्कुल नई भाषा सीखने की ज़रूरत पड़े। जैसे कि कैथौलिक चर्च से जुड़ने के लिए लैटिन सीखने की ज़रूरत होती है, डॉक्टर को अपने नुस्ख़े लिखने के लिए भी लैटिन की सीमित शब्दावली की ज़रूरत होती थी। कुछ स्कूलों और महाविद्यालयों में खाने के समय लैटिन में प्रार्थना गाना अभी भी ज़रूरी है। और दीक्षांत समारोहों में भी लैटिन सुनी जा सकती है। सामान्य तौर पर एक व्यक्ति भाषा का नया प्रकार तभी सीखता है जब वह कोई सामाजिक भूमिका लेता है, जैसे किसी संस्कृति में कोई भी विशेष प्रकार की सांस्कृतिक क्रिया को संचालित करना (शादी की रस्म या फिर कुछ और)। या फिर किसी विशिष्ट व्यवसायी की भूमिका (वकील, पुलिस और परेड करवानेवाले सर्जेंट) आदि। इन सभी तरह की कार्य भूमिकाओं में नए तरीक़े की लय में बात रखना, बोलते समय कहां ज़ोर देना है, कहां नहीं देना आदि।

इन सभी बातों का उपयोग विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण है। इस तरह की भूमिकाओं में निभानेवाले का लहज़ा, उच्चारण का ढंग, कुछ बात ज़ोर से कहना, लय और उतार–चढ़ाव आदि सभी विशिष्ट प्रकार के होते हैं। इस प्रकार की किसी भी सामाजिक भूमिका के भाषाई गुण आम तौर पर काफ़ी आराम से पहचाने जा सकते हैं। लेकिन कई बार इन्हें आसानी से नहीं भी पहचाना जा सकता। ऐसा तब होता है, जब उन भूमिकाओं को ही आसानी से अलग करके नहीं पहचाना जा सकता हो। जिन संस्कृतियों से आपका कम परिचय होता है व उन भाषाओं को जिन्हें आप उस समय के संदर्भ से नहीं सीखते, उसके संदर्भ में यह समझना मुश्किल हो जाता है कि सामाजिक अंतःक्रिया में क्या कुछ हो रहा है। जो हो रहा है उसके पीछे क्या है? यह समझना भी मुश्किल होता है कि किसी सामाजिक समारोह, बैठक अथवा जब भी लोग इकट्ठे होकर कुछ कर रहे हों तो उसमें भागीदार के रूप में कैसा व्यवहार करना है। किसी एक भाषाई समुदाय अथवा किसी दूसरे समुदाय में आने पर मेहमान को कैसे व्यवहार करना है, यह भी अलग–अलग होता है। कुछ देशों में यह सभ्य व शिष्ट समझा जाता है कि खाने के साथ–साथ खाने की तारीफ़ की जाए, किन्तु कई अन्य जगहों पर इसे अभद्र समझा जाता है। कुछ देशों में औपचारिक आमंत्रण पर आए मेहमान से अपेक्षा होती है कि वे खाने के बाद तत्काल एक छोटा भाषण दें, अन्य देशों में ऐसी कोई अपेक्षा नहीं होती। कई बार चुप्पी को भी महत्त्वपूर्ण मान लिया जाता है।

समारोहों की भाषा

रीति–रिवाज़ों को सम्पन्न करने के लिए सभी समुदायों ने अपनी–अपनी भाषा का विकास किया है। इन रीतियों के संचालन में जिन लोगों की मान्य भूमिका व दर्जा होता है वे विशेष तौर की भाषा का उपयोग करते हैं। जो इनमें भाग लेते हैं वे भी विशेष भाषा का उपयोग करते हैं। रीति–रिवाज़ की भाषा में यह अन्तर नई भाषा के उपयोग तक जाता है (इसमें सुननेवाले को कुछ भी समझ आया या नहीं इसकी चिन्ता नहीं होती)। कभी यह अंतर रोज़मर्रा की भाषा में थोड़े बहुत अंतर तक ही सीमित होता है। जैसाकि प्रार्थनाओं व धार्मिक भाषणों में यह अंतर ध्यान से की गई प्रस्तुति, असामान्य और कभी–कभी असाधारण व्याकरण व शब्दावली को भी शामिल करता है। इसके कई उदाहरण हैं, जैसे कि जूनी लोगों में पवित्र शब्द (जैसे इव–उसु, पेना, वी) आदि को लयबद्ध टुकड़ों में बोला जाता है। यह कुछ–कुछ कविता को गाने की लय को उलटा करने के समान है। इसमें लय, ताल, भाव के उतार–चढ़ाव का जो अपेक्षित पैटर्न होता है उससे उलट होता है। इसमें जिन ध्वनि इकाइयों पर सबसे ज़्यादा ज़ोर होना चाहिए, उस पर सबसे कम होता है। और जिन ध्वनियों को सामान्यतः सबसे हलके से बोलना होता है, उन पर ज़ोर सबसे अधिक होता है।

कोलम्बिया के खाम्सा आदिवासियों के रीति–रिवाज़ों में भी लय व ताल स्पष्ट पता चलती है जो कुछ–कुछ गीत की तरह है पर इसके अलावा रीति–रिवाज़ की भाषा में व्याकरण व शब्दों के अर्थ में भी कुछ अन्तर होता है। वे स्पेनिश भाषा के शब्दों का कहीं अधिक उपयोग करते हैं। सामान्य में हो रहे 20% उपयोग के

स्थान पर 60% तक स्पेनिश शब्दों तक। इस तरह के कई उदाहरण अन्य अलग–अलग स्थानों व समाजों के भी उपलब्ध हैं।

भाषा और पहचान

''आप कौन हैं? आप कहां से हैं? आप क्या करते हैं?'' आप अभी क्या कर रहे हैं? ऐसे कई सवालों के उत्तर हमारे बोलने के ढंग में छिपे होते हैं। जैसे ही हम बोलना शुरू करते हैं, सुननेवाले को बिना ज़्यादा सोचे–विचारे और बिना चाहे, अपने बारे में, अपने निजी इतिहास और सामाजिक पहचान के बारे में कई बातों की झलक दे देते हैं। इस प्रकार हमारी भाषा, हमारी पहचान का निशान होती है। जो भाषाई संकेत हमारे संवाद में होते हैं वे इतने विशिष्ट होते हैं कि जानकार व्यक्ति उससे बहुत कुछ जान लेता है। सबसे ज़्यादा बड़ी बात यह है कि भाषा यह दिखाती है कि हम कहां के हैं और भाषा ही हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय पहचान का स्वाभाविक बिल्ला अथवा चिह्न है। इस भाग में भाषा के इस पहलू पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। हमें यह अहसास होना आवश्यक है कि अपनी व अन्य लोगों की भाषाओं के बारे में हमारा दृष्टिकोण, ख़ुशी, गौरव, तनाव, ग़ुस्सा और यहां तक कि लड़ाई–झगड़े तक का स्रोत बन सकता है। पहले भाग में भाषा और शारीरिक व मनोवैज्ञानिक पहचान तथा अस्तित्व के रिश्ते की चर्चा की जाएगी – किस प्रकार बात करने के ढंग में हमारी उम्र, लिंग, व्यक्तित्व और समझ आदि जैसे पहलुओं के संकेत छिपे होते हैं। अगले भाग में हमारी भौगोलिक पृष्ठभूमि किस प्रकार 'भाषा' में दिखाई देती है तथा इसके और क्या भाषाई पहलू जैसे उच्चारण का ढंग होते हैं। तीसरे भाग में जातीय व सामाजिक पहचान की चर्चा की गई है – किस प्रकार ये हमारी भाषा पर प्रभाव डालते हैं, और किस प्रकार हमारी भाषा सामाजिक ढांचे की समझ को अपने अंदर छिपाए रखती है। यह समझने योग्य है कि हमारी सामाजिक पहचान व अस्मिता के बनने में नस्लवाद, राष्ट्रीयता, वर्गों व जातियों में बंटवारा तथा इनसे जुड़ी मान्य भूमिकाएं, निकटता–दूरी, सामाजिक पूर्वाग्रह सभी हैं।

वे इस बात को प्रभावित करते हैं कि भाषा का उपयोग कैसे होगा। वे इसको भी प्रभावित करते हैं कि सामाजिक ढांचे को हम किस प्रकार देखते हैं जो इस पर निर्भर नहीं है कि हमारी मातृभाषा क्या है। भाषा के बदलने का एक बड़ा हिस्सा सांदर्भिक पहचान के अन्दर रहता है। इसमें हम यह समझते हैं कि लोग कौन सी भाषा इस्तेमाल करेंगे? यह इस बात पर भी निर्भर है कि बातचीत का तात्कालिक संदर्भ क्या है? हम किस स्थिति और संदर्भ में अपने आपको पाते हैं, यह हमारे बात करने के ढंग को प्रभावित करता है। इस संदर्भ के तीन अलग–अलग पहलू पहचाने जा सकते हैं, ये हैं माहौल व स्थान, भागीदार और वे उस समय किस कार्य में संलग्न हैं। यह सब हमें अन्य विषय जैसे अभिवादन का तरीक़ा, ख़बरें पढ़ना अथवा सुनना, भाषण देना, रोज़मर्रा की बातचीत, चालू भाषा, आदि से भी जोड़ते हैं। इसके साथ ही अन्य बातें भी हैं, जैसे कम विस्तृत भाषा उपयोग, मुहावरे जो कि इसके विपरीत हैं, संकेत व गोपनीय भाषा, भाषा के खेल, व्यंग्य व कला के अन्य रूप। व्यक्तिगत भाषाई पहचान व्यक्तिगत ढंग पर भी आधारित है। इसमें विविधता का एक पहलू साहित्यिक व ग़ैर साहित्यिक भाषा के उपयोग का है और फिर गद्य, पद्य व नाटक की शैली है।

मनोवैज्ञानिक पहचान

आम तौर पर हम लोगों को उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं जैसे दिमाग़ की तेज़ी, अच्छी एकाग्रता स्मृति, आदि के आधार पर पहचानते हैं। सामान्य तौर पर हम यह निष्कर्ष उनकी ग़ैर भाषाई व्यवहारों के आधार पर करते हैं। जैसे कि कोई व्यक्ति एक यन्त्र ठीक कर सकता है या नहीं, ध्यान से समझ सकता है कि नहीं, रास्ता याद रख सकता है या नहीं, मित्रवत् व्यवहार करता है या नहीं, इन सबको देखने के लिए हमें उसकी भाषा की ओर नज़र डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु कई बार हम व्यक्ति की भाषा को ऐसे मत बनाने का एक केन्द्रीय आधार बना लेते हैं और यह उस व्यक्ति की पहचान, अस्मिता व अस्तित्व के अध्ययन का हिस्सा है।

शैक्षिक मनोविज्ञान के किसी भी क्षेत्र से इस प्रकार की भाषाई खोज शुरू हो सकती है। हम यह खोजने का प्रयास कर सकते हैं कि भाषाई समताएं व कौशल, भाषाई ढांचा, स्मृति, ध्यान

दे पाना, व्यक्तित्व आदि किसी भी मान्य मनोवैज्ञानिक जैसे – विचारों के बीच का सम्बन्ध क्या है? ऐसे अध्ययनों के सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों तरह के परिणाम हो सकते है।

यह दिमाग़ के कार्य करने की प्रक्रिया के लिए संभव प्रतिमानों के प्रकार व निर्माण के ढंग की ओर संकेत करते हैं। यह भाषा विज्ञान विषय का एक प्रमुख हिस्सा है। यह भाषा सीखने के कई पहलुओं व प्रश्नों से भी जुड़े हैं।

भाषाई दृष्टिकोण से देखें तो लगता है कि वयस्क होने के बाद भाषा के वे पहलू जो मनोवैज्ञानिक गुणों से जुड़े लगभग स्थायी हो जाते हैं और ज़्यादा आकार, रंग ढंग जैसे भौतिक गुणों के समान होते हैं बनिस्बत अस्थायी व चेतन रूप से नियंत्रित किए जा सकनेवाले गुणों के समान होने के कई दशकों के गहन अनुसंधान के बावजूद, भाषा और बुद्धि का संबंध आज भी ठीक से नहीं समझा गया है और इसके बारे में, कुछ स्पष्ट कहना संभव नहीं है। लोगों की बुद्धि का आकलन मौटे तौर पर उनके व्यवहार एवं कुछ दिए गए कार्यों को कर पाने की क्षमता व कुशलता के आधार पर किया जाता है।

भाषा और बुद्धि

बुद्धि की परख की एक लम्बी परम्परा है जिसमें कुछ कार्यों के छोटे–छोटे सेट (समूह) दिए जाते हैं ताकि उपलब्धि का स्तर व व्यक्तिगत अंतर को उभारा जा सके। इस तरह के टेस्ट के आधार पर बुद्धि के माप को एक संख्या द्वारा दिया जाता है, और इस तथाकथित उपलब्धि का स्तर एवं व्यक्तिगत भेद को प्रदर्शित करनेवाले इन संख्याओं को शिक्षा जगत, मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला, व अन्य संदर्भों में भी व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

अधिकतर शोध बच्चों के बौद्धिक विकास के संदर्भ में किया गया है – किस तरह बच्चे अपने आसपास के बारे में सीखते हैं, कुछ स्थिति में शामिल होते हैं, समस्या का हल करते हैं, अपनी परिस्थिति के साथ अंतःक्रिया करते हैं। इन प्रश्नों के संदर्भ में कई सैद्धान्तिक मत हैं जो अलग–अलग समझ का ढांचा बनाते हैं। मानसिक रूप से कमज़ोर व पिछड़े बच्चों के साथ किए अध्ययन बताते है कि भाषा सीखने के लिए बुद्धि का एक न्यूनतम स्तर सामान्य टेस्ट द्वारा किए परीक्षण में दिखना चाहिए। किन्तु यह न्यूनतम स्तर, बहुत ऊंचा नहीं होता। और यह बात साबित कर दी गई है कि बुद्धि एवं किसी भी भाषा के विशेष संरचनात्मक ढांचे का प्रयोग करने में कोई संबंध नहीं है। बुद्धि को छोटे शिशु के आवाज़ निकालने, शब्द भंडार, व्याकरणीय जटिलता, मुहावरे, छंद व अलंकार युक्त का प्रयोग आदि जैसी बातों से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

रूढ़ मान्यताएं

अक्सर लोग भाषा और व्यक्तित्व के अन्य लक्षणों जैसे– बुद्धि, सुन्दरता आदि में संबंध समझते हैं। ऐसी धारणाओं को स्टीरियोटाइप कहा जाता है। जैसे वे लोग जो किसी भाषा का शुद्ध प्रयोग करते हैं, बिना रुकावटों के बात करते हैं, और तेज़ी से बात करते हैं, उन्हें सक्षम, प्रभावी एवं गतिशील माना जाता है। और वे लोग जो क्षेत्रीय, जातीय या निम्न वर्गों से जुड़ी भाषाओं का प्रयोग करते हैं, उनमें अखंडता और आकर्षकता जैसे गुण माने जाते हैं।

भौगोलिक पहचान

भाषाई पहचान की सबसे आसानी से दिखनेवाली विशेषताएं वे होती हैं जो क्षेत्र के साथ बदलती हैं और बोलनेवाला कहां से आया है, इस बारे में बताती हैं। इनसे कई तरह के सवाल कई स्तर तक पूछे जा सकते हैं जैसे कि व्यक्ति कहां से है अमेरिकन महाद्वीप से, यूएसए से, न्यूयार्क से या फिर ब्रुकलीन से आदि। क्षेत्रीय समुदायों से आनेवाले लोगों की भाषा अलग–अलग हैं। इन विशेषताओं से भिन्न क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों को अलग–अलग किया जा सकता है और बोलनेवाला कहां से है यह पहचाना जा सकता है। भाषा बोलनेवाले के बारे में जो बताती है वह इस बात पर निर्भर है कि हम किस भाषा की बात कर रहे हैं। भौगोलिक स्थान से भाषा का संबंध है पर वह अलग–अलग भाषा के संदर्भ में अलग–अलग है। हालांकि आज के हालात में जब लोग एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं कोई व्यक्ति कहां से है पहचानना इतना आसान नहीं रहा है, क्योंकि हर व्यक्ति की भाषा में दो–चार जगहों का असर आ ही जाता है।

क्षेत्रीय बोलियों की प्रचलित मान्यताएं

क्षेत्रीय बोलियों से कई ग़लतफहमियां

जुड़ी हैं। ऐसा कई बार सोचा जाता है कि बोलियां केवल कुछ लोग ही बोलते हैं। इन्हें अक्सर नीचा, देहाती और गंवार समझा जाता है। लेकिन वे यह नहीं देख पाते कि शहरों में भी एक ही भाषा के अनेक रूप अथवा बोलियां इस्तेमाल होती हैं और यह बढ़ रही हैं। ऐसी बोलियों को प्रायः किसी मानक भाषा का विकृत रूप सोचा जाता है। यह कई तरह से दिखता है। जैसे यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति शुद्ध अंग्रेज़ी भाषा बोलता है और इसमें बोली का कोई पुट नहीं है। यह बात ध्यान में नहीं रखी गई है कि मानक अंग्रेज़ी उसी तरह की एक बोली है जैसे कोई और अंग्रेज़ी की बोली। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा व बोली में कोई अंतर नहीं होता। सभी भाषाओं को बोलियों का एक इन्द्रधनुष माना जाता है।

कई बार यह भी सोचा जाता है कि दूरस्थ भाषा जिसे लिखा नहीं जा सकता बोली है और उसमें भी कुछ आदिम अथवा पिछड़ी बोलियां हैं। यह समझने योग्य बात है कि असल में सभी लोग भाषाओं का नहीं, बोलियों का प्रयोग करते हैं – चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण, मानक हो या अमानक, उच्च वर्ग का हो या निम्न। भाषाई संरचना की दृष्टि से कोई एक बोली किसी दूसरी से श्रेष्ठ नहीं होती, हालांकि अनेक बोलियों को सामाजिक दृष्टिकोण से प्रतिष्ठित माना जाता है। बोली और बोलने का ढंग अलग–अलग हैं, इसमें अक्सर भ्रम हो जाता है और बोलनेवाले के उच्चारण के ढंग व लय को बोली के साथ जोड़ लिया जाता है। एक ही बोली बोलनेवालों का उच्चारण भी अलग–अलग हो सकता है। जैसे अलग–अलग बोलीवालों के उच्चारण में अंतर होता है। ठीक वैसे ही मानक अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी बोलने वाले बहुत अलग–अलग ढंग से उच्चारण करते हैं और यह एक ही बोली है। अन्य बोली मानने के लिए व्याकरण व शब्दावली में भी अंतर होना चाहिए। वैसे देखा जाए तो हर स्थिति की भाषा का उपयोग अलग–अलग होता है। कोई भी दो व्यक्ति भाषा को ठीक एक जैसे उपयोग नहीं करते। व्याकरण, उच्चारण, अर्थ की समझ में थोड़े बहुत अंतर तो होते ही हैं। यह कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति की एक हद तक अपनी व्यक्तिगत बोली होती है। भाषा का अध्ययन करते समय हम एक व्यक्ति की भाषा में शुरू करके ही, बहुत सी ऐसी idiolect से एक बोली बनती है।

परस्पर सुबोधता

भाषा और बोली में स्पष्ट अन्तर करना एक कठिन काम है। यदि दो लोग जिनकी बोलियां अलग–अलग लगती हैं, एक दूसरे को समझ पाते हैं, तब यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा एक है पर बोलियां अलग। यदि वे एक दूसरे को समझ नहीं पाते तो यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषाएं ही अलग करने का एक सरल उपाय देती हैं। लेकिन यह उपाय हमेशा कारगर नहीं है और इसमें समस्या हो सकती है। कई बार, दो बोलियां, जो एक ही भाषा से जुड़ी होती हैं, वे आपसी सुबोधता के मानदंड को पूरा नहीं कर पातीं। इससे भी बड़ी समस्या उन उदाहरणों में होती है जहां बोलियां निरन्तर बदल रही हैं।

जैसे कि एक भाषाई कंटिन्यूम हो। यह बोलियों की एक चेन होती है जो उस क्षेत्र में पाई जाती हैं। दो बोलियां, जो इस चेन में साथ–साथ पाई जाती है, वह परस्पर सुबोध होती हैं। लेकिन दो बोलियां जो इस चेन पर एक–दूसरे से दूर होती हैं, वह परस्पर सुबोध नहीं होतीं। जैसे–जैसे बोलनेवालों के बीच भौगोलिक दूरी बढ़ती है, वैसे–वैसे उनके एक–दूसरे को समझने की संभावना कम होती जाती है। इसलिए दो लोग जो उन दो बोलियों का प्रयोग करते हैं जो के दो विपरीत समाज होते हैं, वे एक–दूसरी की बोलियां समझ नहीं सकते, जबकि वे एक आपसी सुबोधता की चेन से जुड़े होते हैं। इसमें यह तय कर पाना मुश्किल होता है कि इस चेन पर हम कहां कहें कि यहां पर एक नयी भाषा शुरू हो गई।

सामाजिक पहचान

यूरोप के संदर्भ में देखें तो डच भाषा से शुरू करते–करते बग़ैर कोई भी ऐसा इलाका आए जहां के रहनेवाले एक दूसरे की बात नहीं समझते, देश की सीमा के पार होते ही भाषाओं के नाम बदल जाते हैं। ऐसा भारत में भी होता है। बड़े भौगोलिक क्षेत्रों से जहां लोगों की बसाहट लगातार है यह स्वाभाविक है और हम नई भाषा के शुरू होने की जगह को नहीं पहचान सकते।

भारतीय भाषाएं
विकासशील समाज में पहचान का माध्यम

अंजनी कुमार सिन्हा

भाषावैज्ञानिकों और जनगणना विशेषज्ञों का कहना है कि यद्यपि अल्पसंख्यक समुदाय अपनी पहचान बनाए रखने के लिए अपनी भाषा को सजीव रखने का भरसक प्रयास करता है लेकिन वह शायद ही इसमें सफल होता है। इस मत की पुष्टि का साक्षात् उदाहरण है– संयुक्त राज्य अमेरिका जो यूरोप, एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका से आए हुए विभिन्न समुदायों का देश है। यद्यपि इन समुदायों की अलग–अलग भाषाएं और बोलियां थीं, किंतु संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य रूप से एकभाषी देश है। यह सही है कि 1983 की अमरीकी जनगणना में यह कहा गया है कि उस देश में 83 विभिन्न बोलियां बोली जाती हैं किंतु जहां तक ठोस आंकड़ों का प्रश्न है, सिर्फ़ निम्नलिखित भाषाओं का विवरण दिया गया है : स्पैनिश 1,46,00,000, चीनी 8,06,000, जापानी 7,01,000 कोरियन 3,54,000 और वियतनामी 2,61,000 (गार्जियन, 24 जून 1984)। यद्यपि अमरीकी संविधान में किसी भाषा को राष्ट्रभाषा की संज्ञा नहीं दी गई है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से लिख दिया गया है कि उसी व्यक्ति को अमरीकी नागरिकता दी जाएगी जो अंग्रेज़ी भाषा जानता है। हाल में कुछ चुनिन्दे नगरों के स्कूलों में कुछ ग़ैर–अंग्रेज़ी भाषाओं को पढ़ाने की व्यवस्था की गई है, लेकिन अधिकांश स्कूलों में इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है। अधिकांश अप्रवासी अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा सिखाने के लिए रविवारीय विद्यालयों का सहारा लेते हैं, जो उनके सामुदायिक संगठनों या चर्च द्वारा चलाए जाते हैं। स्पष्ट है कि इस तरह की व्यवस्था अधिक दिनों तक कारगर ढंग से नहीं चल पाती है और तीसरी पीढ़ी के आते–आते अप्रवासी अमरीकी अपने बाप–दादाओं की भाषाएं भूलने लगते हैं। जातीय चेतना के जागरण की पृष्ठभूमि में ग़ैर–अंग्रेज़ी भाषाओं को स्कूलों में पढ़ाने की जो व्यवस्था अमेरिका में की जा रही है, उससे राजनीतिज्ञों का एक बड़ा तबक़ा असंतुष्ट है, जैसा कि सिनेटर वाल्टर इडलस्टन के इस वक्तव्य से स्पष्ट है : अगर हम हाल में अपनाए गए रास्ते पर चलते रहे तो मेरा विश्वास है कि हम अपनी उस एकता की जिसे हमारी उभयनिष्ठ भाषा ने बना रखा है, अपूरणीय क्षति पहुंचाएंगे (वही)।

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत दोनों जनतांत्रिक देश हैं, भाषा के संदर्भ में देखने पर भारत की स्थिति अमेरिका से बिल्कुल भिन्न है। देश के बंटवारे के संदर्भ में स्वतंत्रता की प्राप्ति के समय और उसके बाद सिंधी भाषाभाषी पाकिस्तान से भारत आए और देश के विभिन्न भागों में बस गए। इस बात के प्रायः पचास साल बीत गए हैं किंतु अभी भी भारत में, 1981 की जनगणना के अनुसार, 20,44,389 सिंधीभाषी हैं (जिसमें कच्छीभाषी भी शामिल हैं) ये देश के नौ राज्यों और एक संघीय क्षेत्र में बिखरे हुए हैं। सिंह और मनोहरन के अनुसार यह भाषा इकसठ समुदायों के द्वारा बोली जाती है (लैंग्वुएज एंड स्क्रिप्ट्स, पीपुल ऑफ इंडिया, खंड नौ, कुमार सुरेश सिंह और एस. मनोहरन)। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो दूसरा अप्रवासी काफ़ी संख्या में भारत में आया है, वह तिब्बतियों का है। 1981 की जनगणना के अनुसार, उनमें 63, 431 ऐसे तिब्बती हैं जो भारतीय नागरिक हैं और इस भाषा का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं, वे मुख्यतः अरुणाचल प्रदेश, दिल्ली और सिक्किम के निवासी हैं। (इस आंकड़े में तिब्बती शरणार्थी सम्मिलित नहीं हैं)। अगर हम यह कहकर बात टाल दें कि ये तो तिब्बतियों की पहली या दूसरी पीढ़ी है और बाद की पीढ़ियां अपनी भाषा भूल जाएंगी तो यह ग़लत होगा क्योंकि हमारा इतिहास ऐसा नहीं बताता। पिछले चालीस वर्षों में चीनियों का अप्रवास नहीं हुआ है, अर्थात् जो भी भारतीय

चीनी नस्ल के हैं, वे कम–से–कम दूसरी या तीसरी पीढ़ी के हैं, फिर भी 1971 की जनगणना के अनुसार हमारे देश के 10,958 नागरिक चीनी भाषा को मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। ये चीनी मुख्यतः पश्चिम बंगाल में रहते हैं। उसी प्रकार 10,504 भारतीय फारसी को अपनी भाषा मानते हैं। ये फारसी बोलनेवाले हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार पंजाब, जम्मू–कश्मीर और चण्डीगढ़ में रहनेवाले 8,688 भारतीय नागरिक पश्तोभाषी हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार 28,116 भारतीय नागरिक अरबीभाषी हैं। ये मुख्यतः आंध्र प्रदेश के निवासी हैं, पांडिचेरी में रहनेवाले 2,593 भारतीय फ्रेंच बोलते हैं। असम में रहनेवाले 1,381 भारतीय नागरिकों ने यह दावा किया है कि उनकी मातृभाषा ताई है। उसी प्रकार अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में रहनेवाले 2,871 भारतीय नागरिक बर्मी को अपनी मातृभाषा मानते हैं। पश्चिम बंगाल के 62 भारतीय नागरिक अर्मेनियनभाषी हैं और दिल्ली नगर के 506 व्यक्ति हिब्रू को अपनी मातृभाषा मानते हैं। पांडिचेरी के 13 भारतीय नागरिकों ने लाओशियन को अपनी मातृभाषा बताया है। इन सभी नागरिकों के पूर्वज काफ़ी पहले भारत में आए थे। इनकी भाषाएं जीवित हैं जो इस बात को प्रमाणित करती है कि भारतीय समाज अल्पभाषियों की भाषाओं को जीवित रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। यही कारण है कि भारत के 2,02,440 ऐंग्लो इंडियनों ने बिना झिझक अंग्रेज़ी को अपनी मातृभाषा घोषित किया है। ऐसा नहीं कि ये तिब्बती, चीनी, फारसी, पश्तो, हिब्रू, अरबी या अर्मेनियन बोलनेवाले भारतीय मूल की कोई भाषा नहीं बोलते। इनमें से अधिकांश कम–से–कम द्विभाषी हैं। दूसरे भाषाभाषियों से घिरे रहकर भी इन्होंने अपनी भाषा को जीवित रखा है क्योंकि ये इसे अपनी पहचान के लिए आवश्यक मानते हैं।

जिस प्रकार पहचान बनाए रखने के लिए अपेक्षाकृत नए अप्रवासी भारतीय अपने पूर्वजों की भाषा को संजोए हैं, उसी प्रकार अन्य समुदाय के लोगों ने भी अपनी मातृभाषा को बचा रखा है। उदाहरण के लिए, तिब्बती–बर्मन समूह की एक भाषा बोडो को लें, जो 1981 की जनगणना के अनुसार असम, मेघालय और पश्चिम बंगाल में 28,619 लोगों द्वारा बोली जाती है। इसी ग्रुप की दो अन्य भाषाएं हैं दोआरी (9,103) और करबी (मिकिर) (12,600) ये सभी भाषाएं बोडो समुदाय के व्यक्ति अपने समुदाय के अंतर्गत ही संपर्क के लिए प्रयोग में लाते हैं, दूसरे समुदायों से संपर्क सूत्र बनाए रखने के लिए ये अन्य भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

नागा समुदाय के विभिन्न उपसमुदायों की पहचान अपनी–अपनी अलग भाषा से की जा सकती है। अंगामी, आओ, चक सांग, चांग, जेमा, कबुई, कुछ, खिमानगन, कोनयक, लोथा, माओ, मरम, मरिंग, फोम, पोचुरी, रेंगम, संगतम, सेमा, तांगखुल, यिमचुनगर और जेलियांग उपजातियों की भाषाएं भी इन्हीं नामों की हैं (सिंह व मनोहरन, वही, पृ. 87–88)। पीपुल ऑफ इंडिया सर्वे में इक्कीस नागा उपजातियों और उसकी इक्कीस भाषाओं का उल्लेख है। भिन्न उपजातियां आपस में 'नागामीज' में बातें करती हैं जो असमिया भाषा को आधार बनाकर एक तरह की खिचड़ी भाषा है। प्रायः सोलह उपसमुदायों के लोग इसका प्रयोग करते हैं। तेरह उपसमुदाय हिन्दी का, चार असमिया या मैनी (मणिपुरी) का, चार अंगामी का, तीन कबुई का, दो कोनयन का और एक बांग्ला का प्रयोग अंतर–उपसमुदाय संचार के लिए करते हैं। इस सर्वे के अनुसार, सभी उपजातियां कम–से–कम द्विभाषी हैं। बारह उपजातियों के लोग तीन भाषाओं का प्रयोग करते हैं और पांच उपजातियों में मातृभाषा के अतिरिक्त चार भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। स्मरण रहे कि नागालैंड में प्रशासन और शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है और हिन्दी जाननेवालों की संख्या भी कम नहीं है। मैंने नागा जनजाति और उसकी उपजातियों की चर्चा विस्तार से इसलिए की है कि हम परिस्थिति की संश्लिष्टता और गतिशीलता को समझ सकें। ये सभी उपजातियां अपने आप पर और अपनी भाषा पर गर्व करती हैं और ऐसा समझती है कि अपनी पहचान के लिए भाषा को जीवंत बनाए रखना आवश्यक है। जिन उपजातियों के लोग–दूसरी उपजातियों से जितना अधिक मिलते–जुलते हैं, उनके बीच उतनी ही अधिक बहुभाषिकता है। इसके अतिरिक्त ये जनजातियां उस क्षेत्र के समतल क्षेत्र के रहनेवालों से बातचीत के लिए नागामीज का प्रयोग करती हैं और उत्तरी पूर्वी भारत के

बाहर के भारतीयों से बातचीत के लिए अंग्रेज़ी या हिंदी का, संक्षिप्त में यों कहा जा सकता है कि नागा जनजाति की विभिन्न उपजातियों के लोग अपनी पहचान के लिए आपस में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। दूसरी उपजातियों से बातचीत के लिए उनकी भाषा का या नागामीज का प्रयोग करते हैं। अपने क्षेत्र से बाहर के लोगों से बातचीत के लिए हिन्दी या अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं। एक औसत नागा व्यक्ति के लिए 'बाहरी व्यक्ति' का अर्थ है 'नागा जनजातियों के निवास–स्थान (नागालैंड और मणिपुर) से बाहर का व्यक्ति चाहे वह बिहार का हो या पंजाब का या इंग्लैड का।

अगर नागा जनजाति की भाषा संबंधी उदारता उन्हें बहुभाषी बना देती है तो गोआ निवासियों का भाषा विमोह उन्हें संकीर्ण विवादों और झगड़ों में उलझाए हुए है। गोआ के मूल निवासियों का एक बड़ा हिस्सा कोंकणीभाषी है, स्मरणीय है कि कोंकणी इंडो–आर्यन ग्रुप की दक्षिणी शाखा की भाषा है। मराठी भी इसी ग्रुप की भाषा है, फिर भी मराठी और कोंकणी बोलनेवालों के आपसी संबंध अच्छे नहीं हैं। इसका जितना संबंध इन भाषाओं की संरचनात्मक विभेद से हैं, उससे ज़्यादा संबंध इस बात से है कि मराठी इस क्षेत्र के मराठों की भाषा है और कोंकणी सारस्वत ब्राह्मणों, दैव्यायन ब्राह्मणों और कैथलिकों की। द्रष्टव्य है कि जो मराठे कोंकणीभाषी हैं वे अपने को गोमंतक मराठी कहते हैं, महाराष्ट्रीय (मराठी) नहीं। दूसरे शब्दों में, यों कहें कि झगड़े की जड़ मराठों और गोअनीज जन समुदाय का स्वार्थ है, भाषाएं उसकी पहचान और प्रतीक बनकर रह गई हैं। विभिन्न समुदायों को लगता है कि अगर कोंकणी या मराठी उन पर थोपी गई तो उनका वैशिष्ट्य ख़त्म हो जाएगा। यही बात कर्नाटक राज्य में स्थित बेलगांव के संबंध में भी कही जा सकती है। वहां के कन्नड़भाषियों और मराठीभाषियों का झगड़ा तब से चल रहा है जब से भाषाधार राज्यों का गठन हुआ है। शायद यह तब तक चलता रहेगा जब तक निष्पक्ष जनमत के आधार पर बेलगांव का विभाजन नहीं हो जाएगा। स्मरणीय है कि सिर्फ़ गोआ और बेलगांव में ही ऐसे झगड़े नहीं हैं। नेपालीभाषी और अन्य भाषाभाषी लोगों के बीच सिक्किम और दार्जिलिंग में जो झगड़े और विवाद होते रहते हैं, वे अपनी अलग पहचान को लेकर हैं भाषाएं उस पहचान के प्रश्न को सिर्फ़ तीव्र कर देती हैं, वे इनकी अभिव्यक्ति मात्र हैं, कारण नहीं। ये इस बात का द्योतक हैं कि अन्य समुदाय विकासोन्मुख भारत में अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं और अपना स्थान लाभप्रद बनाना चाहते हैं।

1881 से लेकर 1991 तक की भारतीय जनगणना में लोगों से सिर्फ़ यह पूछा जाता रहा है कि उनकी मातृभाषा क्या है और वे दूसरी और कौन–सी भाषाएं जानते हैं। इसके विपरीत, पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट में दो प्रश्नों पर ज़ोर दिया गयाः

(क) आपके घर और परिवार में किस भाषा या बोली का प्रयोग किया जाता है? उसे किस लिपि में लिखा जाता है?

(ख) अपने समुदाय या उपजाति से बाहर के लोगों के संपर्क में रहने के लिए आप किस भाषा या बोली और लिपि का प्रयोग करते हैं?

इन प्रश्नों की अपनी अहमियत है जिसे हिन्दी–उर्दू के संदर्भ में समझा जा सकता है। सर्वे के अनुसार भारतीय मुसलमान आपस में सिर्फ़ उर्दू–बांग्ला या मलयालम में बातचीत करते हैं लेकिन अंतर–समुदाय बातचीत के लिए वे हिंदी या क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करते हैं। सिर्फ़ गढ़वाल क्षेत्र के मुसलमानों ने कहा है कि वे उर्दू की जगह आपसी बातचीत में भी हिंदी या गढ़वाली का प्रयोग करते हैं। हिन्दी क्षेत्र के बारह कच्छ के मुसलमानों ने स्वीकार किया है कि वे कच्छी में बातचीत करते हैं। यहां यह कहना आवश्यक नहीं है कि भाषा की संरचना की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू में शायद ही कोई अंतर है। अगर भिन्नता है तो वह शब्द–भंडार के स्तर पर है, व्याकरणिक नहीं है। हां, लिपि का अंतर तो है ही। यह बात महत्त्व की है कि मुसलमान समुदाय मुख्यतः फारसी–अरबी लिपि का प्रयोग करता है और हिन्दू समुदाय देवनागरी लिपि का। इसी अंतर को भाषाई अंतर मान लिया गया है जिसे अधिकांश मुसलमान अपनी पहचान के लिए एक आवश्यक अंतर मानते हैं। इस संदर्भ में संथाली की चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी जो ऑस्ट्रोएशियाटिक परिवार की मुण्डा शाखा की भाषा है। इसे संथाली

जनजाति के लोग मातृभाषा के रूप में बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम और त्रिपुरा के कुछ क्षेत्र में बोलते हैं। बिहारी संथाली इसे देवनागरी लिपि में लिखते हैं, बंगाली संथाली बांग्ला लिपि में और उड़ीसा के संथाली ओड़िया लिपि में, कुछ ईसाई संथाली इसे रोमन लिपि में लिखते हैं और कुछ कट्टरपंथी संथाली अपनी अलग लिपि में। इस लिप्यंतर का भाषा पर कोई असर नहीं है, संथाली भाषा एक ही समझी जाती है। इसकी वजह यह है कि संथालियों की अपनी अलग जनजातीय पहचान है जो लिपि पर निर्भर नहीं है। उनका रुझान विभिन्न राज्यों में फैले संथालियों को एक सूत्र में करने की ओर है जिसमें संथाली भाषा सहायक है चाहे वह किसी भी लिपि में रखी जाए।

पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के अनुसार भारत में 4,635 नृजातीय (इथनोग्राफिक) समुदाय हैं जिनमें से 4,536 समुदायों के बारे में तथ्य इकट्ठे किए गए हैं। इनमें से 2,209 समुदायों को मुख्य समुदाय की संज्ञा दी गई है, 586 समुदायों को 'खंड' (सेग्मेंट) माना गया है और 1,840 को क्षेत्रीय इकाई के रूप में देखा गया है। सर्वे के अनुसार सिर्फ़ 325 भाषाएं ऐसी हैं जिन्हें मातृभाषा या पारिवारिक भाषा के रूप में बोला जाता है। उनमें 96 भाषाएं ऐसी हैं जिनका प्रयोग द्विभाषी या बहुभाषी समाज द्वारा किया जाता है।

इसके अलावा जो बोलियां हैं, उन्हें मातृभाषा के रूप में बोलनेवाले भी किसी भाषाविशेष की उपभाषा या बोली मानते हैं। अगर हम सर्वे के आंकड़ों की तुलना 1961 की जनगणना में एकत्र भाषा संबंधी आंकड़ों से करें तो पाएंगे कि भारत में शायद ही कोई भाषा लुप्त हुई है। 1981 की जनगणना भी इस बात की पुष्टि करती है। इस जनगणना के अनुसार हिन्दी बोलनेवालों की संख्या 38 प्रतिशत से बढ़कर 42.88 प्रतिशत हो गई है जो ख़ासकर हिन्दी के दूसरी भाषा के रूप में बढ़ते प्रयोग के कारण हुआ है। हिन्दी द्विभाषियों की संख्या 1,76,20,783 से बढ़कर 4,44,02,182 हो गई है जिसमें 17.14 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा मलयालम है। 9. 69 प्रतिशत तमिलभाषी, 6.81 प्रतिशत तेलुगुभाषी और 6 प्रतिशत कन्नड़भाषी हिन्दी को दूसरी या अन्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाते हैं, अण्डमान के निवासियों ने तो अपनी अलग हिन्दी बना ली है जिसे 'अण्डमानी हिन्दी' कहते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विभिन्न समुदाय भाषा और बोलियों का प्रयोग अपने आपको एक सूत्र में पिरोने के लिए करते हैं और दूसरे समुदाय से अपने को अलग–अलग रखने एवं अपनी अलग पहचान बनाए रखने के लिए भी। ऐसा नहीं है कि भारत में भाषाई झगड़े नहीं होते लेकिन आमतौर पर भारतीयों में भाषा के प्रश्न पर असीम सहिष्णुता है जिस कारण सभी भाषाएं जीवंत हैं और द्विभाषियों की संख्या बढ़ती जा रही है। फलतः एक ओर भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं को बोलनेवालों की संख्या बढ़ रही है तो दूसरी ओर उन क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों में भी सृजनात्मक कार्य हो रहा है जो अब तक मौखिक परंपरा पर निर्भर थीं। यही हमारे बहुभाषी समाज की सबसे बड़ी संपत्ति है। हमें इन विरोधाभासी लगनेवाली प्रवृत्तियों से घबराने के बजाय उन्हें समझने की चेष्टा करनी चाहिए और उनके प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

बृहस्पति पर चौम्स्की

जीन आइचिसन

एक बार की बात है अंग्रेज़ी बोलनेवालों से भरा एक अंतरिक्ष–यान बृहस्पति पर उतरा। यान से उतरनेवाले सभी लोग अंग्रेज़ी भाषा में बात करते थे। उन्होंने देखा कि बृहस्पति ग्रह पर हरे रंग के कीट यहां–वहां कूदा–फांदी कर रहे हैं। ये कीट वैसे ही थे जैसे धरती पर काठ के कीट होते हैं। दिखने में ऐसे मानो हरी टहनियां हों! मज़ेदार बात यह कि ये कीट एक–दूसरे से बातें करते। मगर इनकी बात करने का तरीक़ा काफ़ी फर्क़ था। ये कीट किसी जगह पर बैठ जाते और अपनी टांगों के अगले हिस्से जो कि अंगूठे जैसे होते हैं उनसे संकेत करते। इन संकेतों को दूसरे कीट आसानी से समझ जाते। इस तरह से बृहस्पति ग्रह के प्राणियों का काम चल रहा था।

अंतरिक्ष यान में पहुंचे अंग्रेज़ी में बात करनेवालों ने उन कीटों की टांगों से संकेतों की भाषा* आसानी से सीख ली। इस तरह से अंग्रेज़ी बोलनेवाले अंतरिक्ष यात्री उन कीटों के साथ संवाद करने लगे। मगर इन विदेशियों की एक ख़ूबी यह थी कि वे चलते–फिरते बातचीत कर सकते थे। उन्हें बातचीत करने के लिए रुककर, बैठने की और अपने हाथों की उंगलियों और अंगूठों को हिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। इससे सम्राट को जलन हुई। सम्राट ने तय किया कि वह भी अंग्रेज़ी सीखेंगे।

शुरू–शुरू में सम्राट को लगा कि यह काम आसान होगा। सम्राट ने अपने नौकरों को आदेश दिया कि वे अपने ग्रह पर आए अंग्रेज़ों द्वारा बोले गए सभी वाक्य, उनके अर्थसहित, लिख लाएं। हर सुबह सम्राट अपने आपको अपने अध्ययन कक्ष में बंद कर देते और पिछले दिन नौकरों द्वारा लाए वाक्यों को याद करते। सम्राट ने लगभग एक साल तक, यह दिनचर्या अपनाई और वह हर वाक्य जो विदेशियों ने बोला था, ईमानदारी से याद किया। चूंकि सम्राट बृहस्पति के निवासी थे, उनमें इन्सानी भाषा समझने के लिए कुदरती क्षमता नहीं थी। इसलिए वे एक तोते की तरह शब्दों और वाक्यों को रटकर उगल भर पाते थे। सम्राट नए–नए वाक्य नहीं बना पाते थे। सम्राट अंग्रेज़ी में बोले गए शब्दों में कोई भी पैटर्न नहीं पकड़ पाए और उन्हें सीधे तौर पर याद करते रहे। मगर फिर भी सम्राट कैसे पीछे रह सकते थे। सम्राट ने घमंड में यह निर्णय लिया कि उन्हें पर्याप्त अंग्रेज़ी आती है और वे अंग्रेज़ लोगों से बातचीत करेंगे। और अपने ज्ञान को परखेंगे।

सम्राट ने अंग्रेजों को अपने दरबार में बुलाया और उनसे अंग्रेज़ी में बात करना शुरू किया। मगर इसके परिणाम बहुत ही दुःखद थे। सम्राट को जल्द ही समझ में आ गया कि वह ऐसे शब्दों को याद नहीं कर पाया जिनकी बातचीत करते समय ज़रूरत पड़ी। सम्राट अंग्रेज़ लोगों से यह पूछना चाह रहा था कि उन्हें समुद्र के छछुंदर का सूप कैसा लगा? मगर वह इस बात को तो नहीं पूछ पाया और उसने जो पूछा वह यह था कि इस सूप का स्वाद अज़ीब है। यह किसका बना है? जब बारिश हुई तो सम्राट विदेशियों से पूछना चाहता था कि बृहस्पति पर होनेवाली बारिश उन्हें कोई नुक़सान पहुंचा सकती है? इस बारे में सम्राट ने जो पूछा वह था कि "बारिश हो रही है, क्या हम यहां पर रबर के जूते और छाते ख़रीद सकते हैं?"

सम्राट को जल्द ही यह समझ में आ गया कि उसे अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान नहीं है। इस तरह से शब्दों और वाक्यों को याद कर लेने भर से बात नहीं बननेवाली है। हां, सम्राट ने अंग्रेज़ों को बात करते समय यह समझ लिया था कि वे जो वाक्य बोलते हैं वे शब्द नामक इकाइयों से बने हैं, उदाहरण के लिए Jam, Six, help, bubble और ये

*यह भाषा एक सांकेतिक भाषा है, जैसे कि जिसमें शब्दों के लिए संकेत होते हैं और भाषा की प्रत्यक्ष रूप से कोई संरचना नहीं होती।

शब्द वाक्यों में बार–बार आते हैं। हालांकि अब तक सम्राट ज़्यादातर शब्दों को पहचानने लगा था। ये शब्द वाक्यों में एक–दूसरे के साथ नए–नए तरीक़ों से जुड़कर आते और इसके फलस्वरूप नए वाक्यों की संख्या कम नहीं हो रही थी।

सम्राट के लिए इससे भी ख़राब बात यह थी कि कुछ वाक्य बहुत ही लम्बे थे। उन्होंने एक ऐसे ही वाक्य के बारे में बताया जिसमें अंग्रेज़ी बोलनेवाले एक लालची लड़के के बारे में बात करते हुए कह रहा थाः Alexander ate ten sausages, four jam tarts, two bananas, a swiss roll, seven meringues, fourteen oranges, eight pieces of toast, fourteen apples, two ice-creams, three trifles and then he was sick.

सम्राट हताश हो गया और सोचने लगा कि अगर एलेक्ज़ेंडर बीमार नहीं हुआ होता तो फिर इस वाक्य का क्या हुआ होता? क्या वह इसी तरह सदा आगे बढ़ता रहता? एक और वाक्य जो एक अंग्रेज़ी बोलनेवाले ने एक पत्रिका से पढ़ा था, सम्राट को परेशान करता था। यह वाक्य एक टी.वी. सीरियल के पूर्व एपिसोड का सार प्रस्तुत कर रहा थाः Virginia, who is employed as a governess at an old castle in Cornwall falls in love with her employer's son Charles who is himself in love with a local beauty queen called Linda who has eyes only for the fisherman's nephew Philip who is obsessed with his half sister Phyllis who loves the handsome young farmer Tom who cares only for his pigs. सम्राट ने सोचा कि शायद लेखक के पास विवरण देने हेतु पात्र नहीं बचे थे, नहीं तो वाक्य और भी आगे जा सकता था।

इस पूरी कवायद में से सम्राट ने भाषा के दो मूलभूत तथ्य पकड़ लिए थे। पहला यह कि भाषा में सीमित (finite) संख्या में चीज़ें होती हैं जिनको एक–दूसरे के साथ मिलाकर बहुत तरह जोड़ा जा सकता है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात थी सम्राट के लिए। दूसरी बात यह थी कि, जो भी बोला जा रहा है उसके प्रत्येक वाक्य को याद रखना असंभव है। असल में भाषाविज्ञान की दृष्टि से वाक्य की लम्बाई को बांधा नहीं जा सकता। एक मूलभूत वाक्य के साथ असंख्य उपवाक्य जोड़े जा सकते हैं।

**अगर इस बात को अलग तरह से कहें, तो हम कहेंगे कि एक मूलभूत वाक्य में उप–वाक्य डाले जा सकते हैं या जमाए जा सकते हैं।

सम्राट जल्द ही यह समझते हुए इस नतीजे पर पहुंच गया कि सभी अंग्रेज़ी के वाक्यों को याद करना असंभव है। सम्राट को यह एहसास हुआ कि महत्त्वपूर्ण चीज़ इन बोले गए वाक्यों में निहित पैटर्न हैं। अब सम्राट के सामने यह सवाल था कि वह इन पैटर्न के कैसे खोजें? एक तरीक़ा यह हो सकता था कि सम्राट ने जितने भी शब्द इकट्ठे किए अंग्रेज़ी के उन सभी शब्दों की एक सूची बनाएं और फिर यह देखें कि वाक्य में वे शब्द कहां–कहां आ रहे हैं। सम्राट ने ऐसा ही करना शुरू किया। मगर सम्राट को शुरू से ही समस्याएं आने लगीं। उसे यह महसूस हो रहा था कि उसके कुछ वाक्यों में ग़लतियां हैं, पर वह यह नहीं पता कर पा रहे थे कि किन वाक्यों में ग़लतियां हैं। क्या 'I hic have hic o dear hic hiccups' एक सुनिर्मित वाक्य है या नहीं? और 'I mean that what I think to say was this' के बारे में क्या कहा जाए?

सम्राट की दूसरी समस्या यह थी कि उन्हें पैटर्न में खालीपन दिख रहा था। उसे यह नहीं समझ आ रहा था कि इनमें से कौन से खालीपन अपनी ग़लतियों के कारण हैं और कौन से नहीं। उदाहरण के लिए उन्हें Elephant शब्द के साथ 4 वाक्य मिलेः

**भाषा के इस गुण को पुनरावर्तित (Recursiveness) कहते हैं। पुनरावर्तित शब्द एक लैटिन शब्द से आता है, जिसका मतलब है या फिर से उसके अंदर भागना। हम एक वाक्य में बार–बार इस नियम को लागू कर सकते हैं, और सैद्धान्तिक तौर पर यह प्रक्रिया सदा के लिए चल सकती है। पर वास्तविकता में हमें ऐसा करने पर या तो नींद आ जाएंगी या हम ऊब जांएगे या हमारा गला बैठ जाएगा। पर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रुकने के यह कारण भाषाविज्ञान में निहित नहीं है। इसका मतलब है कि किसी भी भाषा में बोले जानेवाले वाक्यों का एक निर्धारित समूह नहीं हो सकता।

The elephant carried ten people.

The elephant swallowed ten buns

The elephant weighted ten tons

Ten people were carried by the elephant:

पर उन्हें ऐसे वाक्य नहीं मिलेः

Ten buns were swallowed by the elephant

Ten tons were weighed by the elephant

ऐसे वाक्य क्यों नहीं मिले? क्या यह खालीपन उसके द्वारा की हुई ग़लती के कारण थे या वे वाक्य व्याकरणीय रूप से सम्भव नहीं थे? सम्राट को यह नहीं पता था और वह बहुत दुःखी और निराश हुआ। इसके चलते सम्राट ने भाषा के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य समझ लिया कि बोले गए वाक्यों को ध्यान से समझने की ज़रूरत है। इन वाक्यों में बहुत–सी ग़लत शुरुआतें और बहुत सा ज़बान का फ़िसलना शामिल है और ये सभी बोले जा सकनेवाले वाक्यों का एक छोटा हिस्सा है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह सम्भावित है कि एक बोलनेवाले की भाषा का प्रयोग ग़लतियों से भरा एक अटकलपच्चू नमूना है, जो उसकी क्षमता (आत्मसात् किए हुए नियमों) का बहुत अच्छा सूचक नहीं है।

बृहस्पति के सम्राट को यह अहसास हुआ कि उन्हें अंतरिक्ष यान में आए विदेशियों की ज़रूरत होगी। सम्राट ने अपने नौकरों को आदेश दिया कि अंतरिक्ष–यान के कप्तान, नोआम नामक एक आदमी, को क़ैद कर लिया जाए। तुरंत ही कप्तान को पकड़कर सम्राट के सामने पेश किया गया। कप्तान से कहा कि उसे तभी छोड़ा जाएगा जब वह अंग्रेज़ी के सभी नियम लिखकर उन्हें दे देगा। सम्राट को पक्का विश्वास था कि कप्तान नोआम को तो नियम पता ही होने चाहिए क्योंकि वह अंग्रेज़ी में बात कर सकता है।

नोआम हैरान रह गया। उसने सम्राट से विनती की और कहा कि भाषा बोलना वैसा ही है जैसे कि हम चलते हैं। इसके लिए यह जानना होता है कि किसी चीज़ को कैसे किया जाए पर यह ज़रूरी नहीं है कि, यह ज्ञान सचेत ज्ञान हो। उसने सम्राट को यह समझाने की कोशिश की, कि धरती पर दार्शनिकों ने दो तरह के जानने में अंतर किया है, कुछ जानना और कैसे जानना। नोआम ने कुछ और समझाया। नोआम ने सम्राट से कहा कि वह जानता था कि बृहस्पति एक ग्रह है, और इस तरह का तथ्य, उसके लिए सचेत ज्ञान था। दूसरी तरफ़ नोआम को यह पता था कि चलते कैसे हैं या बोलते कैसे हैं पर उसे यह नहीं पता था कि वह इस ज्ञान को दूसरों को कैसे दें। दरअसल वह ये क्रियाएं कर तो लेता था पर स्वयं नहीं जानता था कि इन्हें कैसे कर रहा है।

सम्राट अपनी बात पर दृढ़ रहा। उसने आदेश दिया कि नोआम को तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक वह अपने दिमाग़ में आत्मसात् अंग्रेज़ी के नियमों को स्पष्ट रूप से लिख नहीं लेता।

नोआम ने सोचा– मैं कहां से शुरू करूं? बहुत सोचने के बाद उसने उन सभी अंग्रेज़ी के शब्दों की सूची बनाई, जिनके बारे में वह सोच सका। फिर उसने इन शब्दों को एक कंप्यूटर में डालकर यह निर्देश दिया कि कंप्यूटर इन शब्दों को किसी भी तरह जोड़ सकता है। कंप्यूटर को पहले, सभी एक–एक शब्दों को छापना था, फिर दो–दो शब्दों के समूहों को, फिर तीन–तीन शब्दों के समूहों को, फिर चार–चार शब्दों को और इसी तरह, आगे...। कंप्यूटर अपने निर्देशों के अनुसार शब्दों की लड़ियों को निकालने लगा। चार–शब्दोंवाली लड़ियों के कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं :

Dog into into of
Up up up up
Goldfish may eat cats

The elephant loved buns
Down over from the
Skylarks kiss snails badly

नोआम ने सोचा कि कभी–न–कभी कंप्यूटर अंग्रेज़ी का प्रत्येक वाक्य निकालेगा। नोआम ने सम्राट को यह बता दिया कि कंप्यूटर इस तरह से रचा है कि वह अंग्रेज़ी के सभी वाक्यों को पैदा करने की क्षमता रखता है। सम्राट को कुछ शक हुआ कि कार्य इतनी जल्दी कैसे ख़त्म हो गया। सम्राट भी काफ़ी चालाक था। उसने दूसरे विदेशियों को नोआम के काम की जांच करने को दिया और उनका शक सही साबित हुआ। विदेशियों ने बताया कि हालांकि नोआम का कंप्यूटर सिद्धांततः अंग्रेज़ी के सभी वाक्य पैदा कर सकता है, मगर वह केवल अंग्रेज़ी के सार्थक वाक्य ही नहीं पैदा कर रहा है। दरअसल सम्राट तो एक ऐसा यंत्र खोज रहा था जो इन्सानों में आत्मसात् व्याकरण जैसा हो। इसलिए सम्राट ने नोआम के इस कंप्यूटरवाले कार्यक्रम को अस्वीकार कर दिया।

'Dog into into of" जैसे वाक्य इन्सान नहीं स्वीकारते हैं। यह भी असम्भाव्य है कि वे 'Goldfish may eat cats' या 'Skylarks kiss snails badly' जैसे वाक्य स्वीकारेंगे। पर इन दोनों वाक्यों में व्याकरण की दृष्टि से कुछ ग़लत नहीं है। ये goldfish की ख़ुराक और skylarks की प्रेम विषयक पसंदों के बारे में अनावश्यक तथ्य हैं जिनका व्याकरण से कुछ लेना–देना नहीं है।

नोआम को लगा कि अब सम्राट को समझाना होगा इसके पहले कि वह ख़ुद समझ ले। नोआम ने बहुत सोचा। नोआम को साफ़ तौर पर यह बात समझ में आई कि सभी वाक्य सीधे तौर पर शब्दों की लड़ियां हैं। कोई भी वाक्य, शब्दों को एक के पीछे एक पिरोने से बनते हैं और इनमें शब्दों के क्रम के बारे में पूरी तौर पर तो नहीं मगर आंशिक तौर पर पहले से अनुमान लगाया जा सकता है। मसलन, इस वाक्य में–

The carefully nurtured child scribbled obscene graffiti on the walls, the के पीछे 'good, little' जैसे विशेषण या 'flower, cheese' जै कभी–कभी 'carefully' जैसे क्रिया विशेषण ही आ सकते हैं।

नोआम ने सोचा कि दिमाग़ में ऐ जिनसे वाक्य में एक शब्द उससे बिल्कुल आगे आनेवाले शब्दों से जु एक ऐसे करना शुरू किया जो एक शब्द से शुरू होता है। फिर यह शब्द ब में से एक विकल्प चुनता है। चुना गया शब्द फिर बहुत से शब्दों में से एक और विकल्प चुनता है और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक वाक्य पूरा नहीं हो जाता। अतः इस प्रक्रिया में एक शब्द अपने बिल्कुल आगे आनेवाले शब्दों को प्रवर्तित करता है।

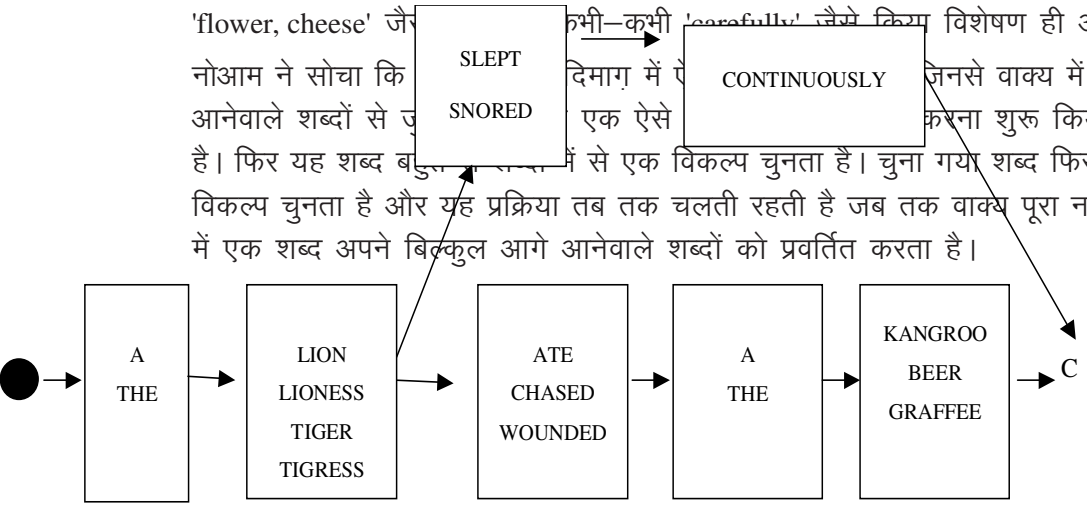

यह सरल यंत्र बहुत से अलग–अलग वाक्यों के बनने को समझा सकता है, जैसे कि–

A lion ate a Kangaroo

The tigress chased the giraffee.

नोआम को लगा कि अगर वह इस यंत्र का विस्तार करता रहा तो उसे शायद अंग्रेज़ी के सभी वाक्य मिल जाएंगे। उसने इस यंत्र को सम्राट के सामने प्रस्तुत किया और सम्राट ने इस यंत्र को फिर अन्य अंग्रेज़ लोगों को दिखाया। अंग्रेज़ों ने यंत्र में एक जीवनघातक दोष बताया। उन्होंने बताया कि ऐसा यंत्र, एक अंग्रेज़ी बोलनेवाले के आत्मसात् नियमों को कभी नहीं, समझा सकता क्योंकि अंग्रेज़ी (और सभी भाषाओं) में ऐसे वाक्य हैं जिनमें एक–दूसरे के बिल्कुल आगे–पीछे नहीं आनेवाले शब्द भी, एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए हमारे पास यह वाक्य है :

The lioness hurt herself.

अगर हर शब्द, उसके बिल्कुल अगले शब्द को ही प्रवर्तित करता, तब आप hurt शब्द के बाद आनेवाले शब्द का lioness शब्द से मेल नहीं बैठा पाते। इस स्थिति में आपके पास यह वाक्य भी हो सकता था।

*The lioness hurt himself.

इसी तरह एक वाक्य जो 'either' से शुरू होता है, जैसे 'either bill stops singing or you find me ear plugs'. इस व्यवस्था के अनुरूप नहीं है क्योंकि इस व्यवस्था में 'or' को प्रवर्तित करने का कोई साधन नहीं है। इसके अतिरिक्त इस बायें–से–दायें model में सभी शब्दों का समान स्तर है और ये एक माला में मोतियों की तरह एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। पर ऐसा नहीं होता है और किसी भी भाषा को बोलनेवाले यह जानते हैं कि भाषा में शब्दों के समूहों को एक साथ या एक इकाई माना जाता है।

The little red hen/walked slowly /along the path/scratching for worms.

कोई भी लिखा गया व्याकरण जो यह दावा करता है कि वह बोलनेवाले के दिमाग़ में आत्मसात् नियमों की ऐसी छवि दे सकता है जैसे आइने में उसका प्रतिबिम्ब, उसे इस तथ्य की ओर ध्यान देना ज़रूरी है।

नोआम को यह एहसास हुआ कि एक व्याकरण को पर्याप्त होने के लिए कम–से–कम दो आवश्यकताएं तो पूरी करनी पड़ेंगी। पहला, उसमें अंग्रेज़ी के सभी वाक्यों और केवल अंग्रेज़ी के वाक्यों को समझा पाने की क्षमता होनी पड़ेगी। भाषाविज्ञान में इसे अवलोकनात्मक पर्याप्तता कहते हैं। दूसरा, उसे काम ऐसे करना पड़ेगा कि वह उस भाषा के पैदायशी बोलनेवालों के अंतर्ज्ञान को व्यक्त कर पाता हो। ऐसे व्याकरण को विवरणात्मक दृष्टि से पर्याप्त कहते हैं।

एक तीसरी कोशिश के अन्तर्गत, नोआम ने निर्णय लिया कि वह अब एक ऐसी व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करेगा जिसमें एक वाक्य को शब्दों में नहीं पर 'शब्दों के समूहों' में तोड़ा जा सके प्रत्येक शब्दों का समूह एक इकाई की तरह काम करता है और वाक्य में एक साथ ही हिलता है। उसने निर्णय लिया कि इसका जवाब एक बहुपरतीय नीचे जाती हुई शाखाओंवाली व्यवस्था में है।

उसने पेज के ऊपर 'वाक्य' शब्द को दर्शाते हुए 'S' अक्षर लिखा। फिर उसने इस अक्षर में से दो शाखाएं निकालीं और इनसे अंग्रेज़ी के सम्भवतः सबसे छोटे वाक्य 'Lions kill' को दर्शाया (आदेशरूपी वाक्यों की बात नहीं करें तो)।

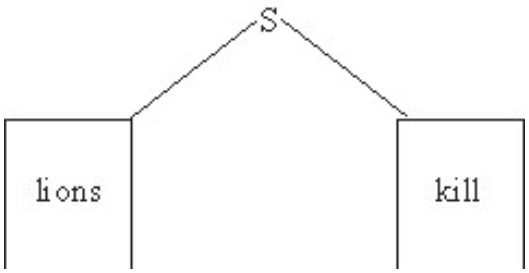

अब इस वाक्य को अगर हम थोड़ा विस्तारित करें और यह वाक्य लें– Hungry lions kill buffaloes और फिर उसे भी थोड़ा और विस्तारित कर ये वाक्य लें– Hungry lions may kill stampeding buffaloes, तो हर शाखा का एक ज़्यादा लम्बे वाक्यांश में विस्तार हो जाएगा। ज़रूरत पड़ने पर प्रत्येक वाक्यांश शाखा में अपने ऊपर आनेवाले वाक्यांश की जगह लिखा जा सकता है।

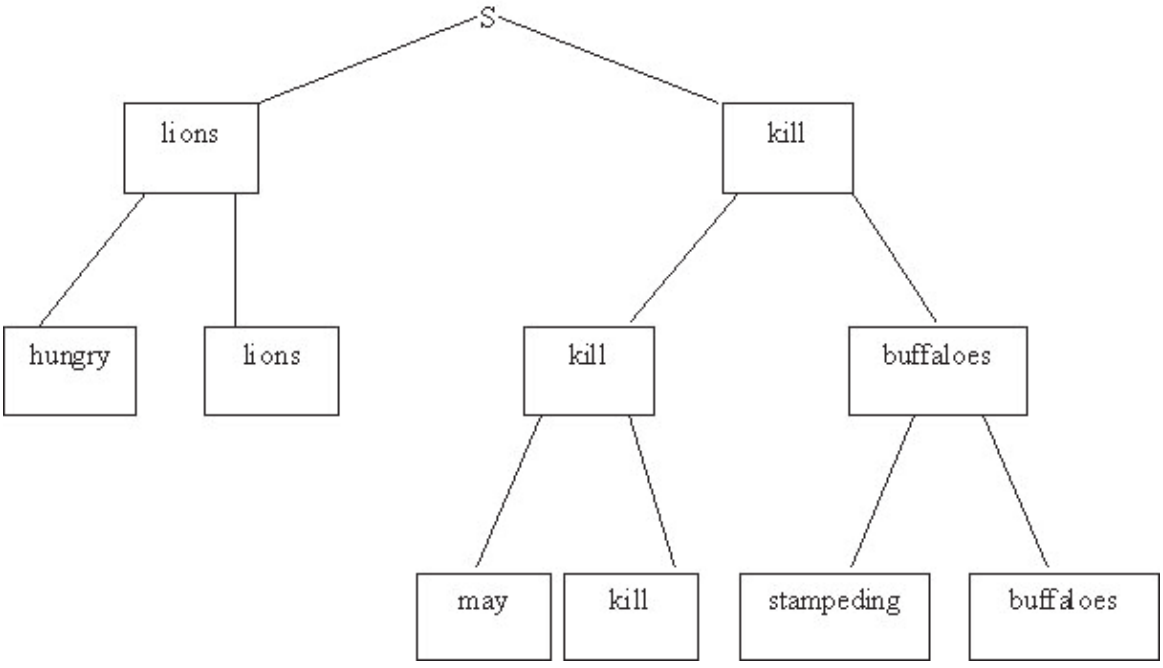

यह वृक्ष आकृति (tree diagram) बड़ी सटीकता से भाषा की पदानुक्रमित व्यवस्था को समझाती थी और इस तथ्य की पुष्टि करती थी कि एक पूरा वाक्यांश व्यवस्था की दृष्टि से एक शब्द के समान है। यह तथ्य कि, 'Kill stampeding' एक इकाई के रूप में उस तरह से नहीं काम करते जिस तरह से 'hungry lions' भी इस आकृति से स्पष्ट हो जाता था।

बृहस्पति का सम्राट ख़ुश हुआ। उसे पहली बार ऐसा लगा कि उसे कुछ–कुछ समझ आ रहा है कि भाषा कैसे काम करती है। नोआम की नई व्यवस्था का महत्त्व समझते हुए उन्होंने अपने आप से कहा 'I want some soup... some seawood soup... some hot seawood soup... some steaming hot seawood soup... '

दूसरे अंग्रेज़ो ने इस व्यवस्था की दबे स्वर में प्रशंसा की। उन्होंने माना कि यह वृक्ष आकृति ऐसे वाक्यों से बहुत अच्छे से समझाती है, जैसे–

Hungry lions may kill stampeding buffaloes.

पर उन्हें इस व्यवस्था से एक बड़ी आपत्ति थी। उन्होंने नोआम से पूछा कि उसे क्या यह अहसास है कि पूरी भाषा के लिए, कितने वृक्षों की ज़रूरत पड़ेगी! और क्या उसे यह अहसास है कि जो वाक्य बोलनेवालों के एक–दूसरे से संबंधित लगते हैं उनके वृक्ष काफ़ी भिन्न होंगे? उदाहरण के लिए–

'Hungry lions may kill stampeding buffaloes' का वृक्ष 'Stampeding buffaloes may be killed by hungry lions' से काफ़ी भिन्न होगा।

और

'To chop down lamp-posts is a dreadul crime', जैसे वाक्य का वृक्ष 'It is a dreadful crime to chop down lamp-posts' से भिन्न होगा।

इससे भी बुरी बात यह होगी कि ऐसे वाक्य जो पैदायशी बोलनेवालों के एक दूसरे से काफ़ी अलग लगते हैं, उनके वृक्ष बिल्कुल एक जैसे होंगे। उदाहरण के लिए–

'The boy was loath to wash' और 'The boy was difficult to wash' का बिल्कुल एक जैसा वृक्ष होगा।

उन्होंने नोआम से पूछा कि क्या ऐसी व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती जिसमें बोलनेवालों को एक जैसे लगनेवाले वाक्यों में संबंध बैठाया जा सके और भिन्न लगनेवाले वाक्यों को एक–दूसरे से अलग किया जा सके।

बहुत सोचने के बाद नोआम को यह अहसास हुआ कि वह वृक्षों की संख्या कम कर सकता है। उसे यह भी लगा कि अगर वह यह मान लेता है कि एक जैसे वाक्य मूलतः एक ही वृक्ष से आते हैं तो वह बोलनेवालों के अन्तर्ज्ञान (कि कुछ वाक्य एक दूसरे जैसे होते हैं) को भी दर्शा सकता है।

उदाहरण के लिए, कर्तृवाच्य (active) और कर्मवाच्य वाक्यों (passive sentences) को नीचे बने वृक्ष से जोड़े जा सकते हैं–

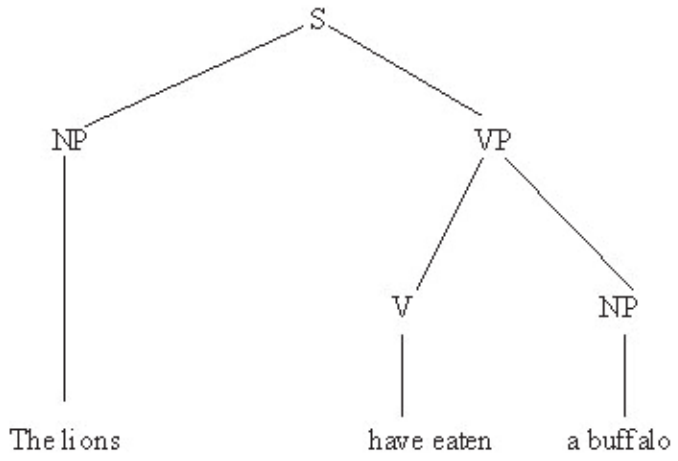

फिर यह गहरी संरचनावाला वृक्ष (deep structure tree) कायापलट नाम की संक्रियाओं से भिन्न–भिन्न सतही संरचनावाले वृक्षों (surface structure trees) में transform किया जा सकता है।

अगर आगे जाकर एक कर्तृवाच्य वाक्य आता है, तो शब्द तो वैसे ही सही क्रम में हैं, केवल क्रिया का उससे बिल्कुल पहले आई संज्ञा से संबंध बैठाना है, ताकि 'the lions have eaten a buffalo' जैसा वाक्य बन सके ना कि 'the lions has eaten a buffalo', जो कि व्याकरण की दृष्टि से सही नहीं है।

पर एक कर्मवाच्य (passive) वाक्य में शब्द–क्रम को बदलने के लिए एक कायापलट की ज़रूरत है। इसके साथ–साथ 'be' और 'by' को वाक्य में डालने की ज़रूरत है और क्रिया से संबंध बैठाने की भी ज़रूरत है। यह ग़ौर करने योग्य बात है कि अगर हमने यह गलत क्रम में किया होता, तो वाक्य कुछ इस तरह बनता–

*A buffalo have been eaten by the lines.

जबकि सही वाक्य है– A buffalo has been eaten by the lions.

नोआम को एहसास हुआ कि वह इसी सिद्धांत से–

'To chop down lampposts is a dreadful crime' और 'It is a dreadful crime to chop down lampposts' को समझा सकता है।

विपरीत रूप से देखा जाए तो–

'The boy was loath to wash' और 'The boy was difficult to wash' के बीच अंतर को भी समझाया जा सकता है अगर यह प्रस्ताव दिया जाए कि ये वाक्य भिन्न गहरी संरचनावाले धागों से संबंध रखते हैं।

सम्राट नोआम की इस आख़िरी कोशिश से बहुत ख़ुश हुए और दूसरे अंग्रेज़ों ने भी माना कि शायद नोआम ने समस्या का एक बहुत अच्छा समाधान ढूंढ़ लिया है। ऐसा लग रहा था कि नोआम ने एक ऐसी स्पष्ट, किफ़ायती व्यवस्था बनाई है जो अंग्रेज़ी के सभी और केवल अंग्रेज़ी के वाक्यों का वर्णन कर सकती है। इसके साथ–साथ यह व्यवस्था बोलनेवालों के अपनी भाषा के बारे में अंतर्ज्ञान को भी अपने अंदर संजोए हुए है। इस व्यवस्था का एक और महत्त्वपूर्ण बोनस यह है कि यह शायद फ्रांसीसी, चीनी, तुर्की, अरवाक या इस विचित्र इन्सानी समाज की किसी भी भाषा के लिए प्रयोग में लिया जा सकता है।

पर सम्राट अभी भी थोड़ी उलझन में था। क्या नोआम सम्राट को यह समझा पाया था कि वस्तुतः अंग्रेज़ी के वाक्यों को कैसे बोला जाता है या क्या उसने केवल इस बात का एक नक्शा बना दिया था कि एक दूसरे से संबंधित वाक्य, एक अंग्रेज़ के दिमाग़ में कैसे संग्रहित होते हैं। नोआम से जब यह बात पूछी गई तो उसने इस बात का ज़्यादा स्पष्ट जवाब नहीं दिया। उसने कहा कि हालांकि नक़्शेवाली बात सच्चाई के ज़्यादा पास लगती है, नक़्शा वाक्यों को बोलने और पहचाने के लिए महत्त्वपूर्ण निहितार्थ रखता है। सम्राट को इस कथन पर बहुत उलझन हुई पर उसे लगा कि नोआम ने कुछ अच्छा काम किया है इसलिए उसे रिहा कर देना चाहिए और भारी इनाम भी देना चाहिए। इस दौरान सम्राट ने ठाना कि जब उनके पास खाली समय होगा तो वह इस प्रश्न पर और गहराई से सोचेंगे कि नोआम की प्रस्तावना किस तरह से इन्सानों के वाक्यों को बोलने और पहचानने से संबंध रखती है।

भाषा की बनावट : चौम्स्की की नज़र में

आइए अब संक्षेप में कहें कि बृहस्पति के सम्राट ने इंसानी भाषा की प्रकृति और उसको समझा सकनेवाले व्याकरण के बारे में क्या पाया। पहला, उन्होंने पाया कि सिद्धान्तः भाषा के प्रत्येक वाक्य को याद कर पाना असंभव है क्योंकि भाषाविज्ञान की दृष्टि से वाक्य की लम्बाई पर कोई रोक नहीं है।

दूसरा, उन्होंने पाया कि बोले गए वाक्यों को ध्यान से समझने की ज़रूरत होती है। इनमें ज़बान से फिसली हुई चीज़ें भी होती हैं और ये, सभी बोले जा सकनेवाले वाक्यों का एक रैंडम नमूना ही है। इसी कारण से यह महत्त्वपूर्ण है कि हम बोलनेवाले के आत्मसात् नियमों की व्यवस्था (भाषा की उसकी क्षमता) पर ध्यान दें न कि उसके द्वारा कहे गए कुछ वाक्यों (भाषा के उनके प्रयोग) पर।

तीसरा, सम्राट को यह एहसास हुआ कि किसी भाषा के अच्छे व्याकरण को अवलोकनात्मक रूप से पर्याप्त होना काफ़ी नहीं है, उसे विवरणात्मक रूप से पर्याप्त भी होना पड़ेगा। एक व्याकरण को अवलोकनात्मक रूप से पर्याप्त तब कहते हैं जब वह एक भाषा के सभी वाक्यों को समझा सकता है और विवरणात्मक रूप से पर्याप्त तब कहते हैं जब वह उस भाषा के पैदायशी वक्ताओं के अपनी भाषा के बारे में अंतर्ज्ञान को अपने अंदर संजोए रखता है। इसका मतलब यह है कि भाषा का एक सरल दाएं–से–बाएं मॉडल जिसमें हर शब्द अपने बिल्कुल पहले आनेवाले शब्द से प्रवर्तित होता है, इस स्थिति में काम नहीं कर सकता। ऐसा मॉडल अवलोकनात्मक रूप से अपर्याप्त है क्योंकि इसमें, एक–दूसरे के बिलकुल आगे–पीछे नहीं आनेवाले शब्द, एक–दूसरे पर निर्भर नहीं हो सकते। यह मॉडल विवरणात्मक रूप से पर्याप्त भी नहीं है क्योंकि यह सभी शब्दों को बराबर महत्त्व का मानता है, जैसे एक माला में मोती, जबकि वास्तविकता में भाषा, संरचना की दृष्टि से पदानुक्रमित है और इसमें 'शब्दों के समूह' एक साथ हिलते हैं।

चौथा, बृहस्पति के सम्राट को लगा कि एक पदानुक्रमित, ऊपर–से–नीचे जानेवाला भाषा का मॉडल एक उचित प्रस्ताव है, पर इससे उन वाक्यों में संबंध नहीं बैठाया जा सकता जो वक्ताओं को एक दूसरे से संबंधित लगते हैं, जैसे–

'To chop down lamp-posts is a dreadful crime' और 'It is a dreadful crime to chop down lamp-posts.'

दूसरी तरफ़ यह, ऐसे वाक्यों में संबंध बैठा देता है जो काफ़ी अलग लगते हैं। जैसे–

The boy was loath to wash.

The boy was difficult to wash.

अंत में सम्राट ने यह मान लिया कि भाषा का एक कायापलट मॉडल जिसमें एक जैसे प्रतीत होनेवाले वाक्यों की एक गहरी संरचना होती है, यही सबसे ज़्यादा संतोषजनक व्यवस्था है। सम्राट को यह समझ आया कि सभी वाक्यों की एक छुपी हुई गहरी संरचना और एक प्रत्यक्ष सतही संरचना है। यह दोनों एक दूसरे से काफी अलग दिखती हैं। उन्होंने यह भी माना कि यह दोनों एक–दूसरे से कायापलट नाम की प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई हैं।

पर सम्राट इस बात से उलझे रहे कि इस आत्मसात् व्याकरण का मॉडल इंसानों द्वारा वाक्यों को बोलने और समझने से कैसे जुड़ा है। उनको लगता था कि नोआम इस विषय पर काफ़ी अस्पष्ट रहा है। बृहस्पति के काल्पनिक

सम्राट ने जो बहुत–सी चीज़ें पाईं वे नोआम चौम्स्की द्वारा उनकी एक पुरानी, पतली पर बहुत प्रभावी किताब 'Syntatic Structures (1957)' में लिखी हुई हैं। इस किताब में वे समझाते हैं कि बाएं–से–दाएं जानेवाला भाषा का 'finte state model' और एक ऊपर–से–नीचे जानेवाला 'phrase structure model' अपर्याप्त क्यों हैं। वे फिर एक कायापलट व्याकरण की ज़रूरत को प्रमाणित करते हैं। पर वे किसी भी स्पष्ट तरीक़े से इस बात पर चर्चा नहीं करते हैं कि एक कायापलट व्याकरण का इस बात से क्या संबंध है कि हम वास्तव में भाषा का कैसे उपयोग करते हैं। आइए इस विषय पर चौम्स्की के नज़रिए को समझें।

भाषाविज्ञान में ज्ञान

चौम्स्की यह दावा करते हैं कि जिस व्याकरण का वे प्रस्ताव दे रहे हैं वह 'बोलनेवाले और सुननेवाले के भाषा के ज्ञान को व्यक्त करता है। यह ज्ञान भीतरी और मौन है। सम्भावना यह है कि भाषा बोलनेवाले से पूछने पर यह ज्ञान एक दम से नहीं मिल जाएगा।

मौन और भीतरी ज्ञान का विचार एक अस्पष्ट सा विचार है और ऐसा लगता है कि जितना चौम्स्की ने चाहा था, उससे ज़्यादा की बात की जाती है। यह ज्ञान दो प्रकार का है। एक तरफ़, यह ज्ञान इसकी बात कर रहा है कि हम बोले गए वाक्य किस तरह बोलते और समझते हैं। इसके अन्तर्गत हम नियमों की व्यवस्था का इस्तेमाल करते हैं, पर इसका मतलब यह नहीं कि हम इन नियमों की व्यवस्था से अवगत हैं। बिल्कुल उसी तरह, जिस तरह से एक मकड़ी अपना जाल, बिना जाल को बुनने के सिद्धांतों को जाने, बुन लेती है। दूसरी तरफ़, भाषा के ज्ञान में, भाषा के बारे में अलग–अलग तरह की प्रतिक्रिया देने की क्षमता भी आती है। बोलनेवाले को भाषा के केवल नियम ही नहीं, पर इसके साथ–साथ, भाषा के बारे में भी कुछ पता होता है। उदाहरण के लिए, बोलनेवाला व्याकरण की दृष्टि से सही और ग़लत वाक्यों के बीच जल्दी से अंतर कर सकता है।

एक अंग्रेज़ी का वक्ता नीचे लिखे वाक्य को बिना हिचकिचाहट मान लेगा–

'Hank much prefers cariare to sardines' पर 'Hank caviare to sardines much prefers' को जल्दी से नामंजूर कर देगा।

इसके साथ–साथ भाषा के परिपक्व बोलनेवाले वाक्यों के बीच संबंध को पहचान पाते हैं। उन्हें पता होता है कि 'fading flowers look sad' और 'flowers which are fading look sad' का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध है।

और 'It astonished us that buzz swallowed the octopus whole' और 'that buzz swallowed the octopus whole astonished' का संबंध है।

ये बोलनेवाले ऐसे वाक्यों के बीच अंतर कर सकते हैं जो सतही तौर पर एक–दूसरे जैसे लगते हैं पर वास्तव में उनमें काफ़ी अंतर है, उदाहरण के लिए–

Eating apples can be good for you

(इस वाक्य का क्या मतलब है? क्या इस वाक्य का यह मतलब है कि eating apple नाम के सेब को खाना आपके लिए अच्छा है या इसका मतलब यह है कि सेब खाना आपके लिए अच्छे हैं)।

Shooting stars can be frightening.

Shooting buffaloes can be frightening.

(ऊपर लिखे दोनों वाक्यों में आपको क्या यह पता चल रहा है कि कौन shoot कर रहा है?)

इस बात में कोई शक की गुंजाइश नहीं है कि एक कायापलट व्याकरण में दूसरे प्रकार का ज्ञान, मतलब बोलनेवाले की अपनी भाषा की संरचना के बारे में समझ समाहित है। लोगों को अपनी भाषा के बारे में अंतर्ज्ञान और भाषा की संरचना का ज्ञान होता है और एक कायापलट व्याकरण इस को समझा पाता है। पर यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है कि एक कायापलट व्याकरण किस तरह से पहले प्रकार के ज्ञान – यह ज्ञान कि हम वास्तव में भाषा का कैसे उपयोग करते हैं, से रिश्ता रखता है।

हालांकि चौम्स्की यह दावा करते हैं कि एक बोलनेवाले का आत्मसात् व्याकरण उसके, वाक्यों को बोलने और समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है, वह इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि यह व्याकरण 'अपने आप में एक perceptual model या एक speech production model के गुण या कार्य क्षमता नहीं बताता है।' वह ऐसी किसी कोशिश को बेतुका मानते हैं, जिसमें व्याकरण को वाक्यों को बोलने और समझने की प्रक्रियाओं से सीधा–सीधा जोड़ा जाता है।

चौम्स्की के शब्दों में 'हमें भाषा की क्षमता (competence) (बोलने–सुननेवालों का अपनी भाषा के बारे में ज्ञान) और भाषा के प्रयोग (वास्तविक स्थितियों में भाषा का प्रयोग) में अंतर करना ज़रूरी है।

आइए, इस बात को एक और तरह से कहें। किसी को भी अगर भाषा आती है, तो वह तीन चीज़ें कर सकता हैः

1.	वाक्यों में बोलना	भाषा का
2.	वाक्यों को समझना	प्रयोग
3.	भाषाविज्ञान का ज्ञान संग्रहित करना	भाषा का ज्ञान

हम यह कह रहे हैं कि एक कायापलट व्याकरण बिंदु 3 को तो समझाता है पर बिंदु (1) और (2) से अलग है या परोक्ष रूप से संबंधित है।

यह एक काफ़ी चक्कर देनेवाली स्थिति है। क्या यह संभव है कि भाषाविज्ञान में जो ज्ञान है, वह भाषा के प्रयोग से बिल्कुल अलग है? अगर नहीं, तो इस बात का क्या मतलब हो सकता है कि दोनों एक–दूसरे से परोक्ष रूप से संबंधित हैं?

यह लेख जीन आइचिसन द्वारा संपादित **'द आर्टिकुलेट मैमल' से हिंदी भावानुवाद कर साभार किया गया है।** जीन आइचिसन आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में भाषावैज्ञानिक हैं।

ज्ञान की संरचना

रमा कान्त अग्निहोत्री

बच्चे अपने ज्ञान की संरचना कैसे करते हैं? अपने आस–पास की दुनिया को कैसे समझते हैं? ऐसा क्यों होता है कि बच्चे अक्सर अपने आस–पास की अनेक जटिल बातें सहज समझ लेते हैं। 'सहज' कहने से यह तात्पर्य नहीं उन्हें कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। केवल इतना ही कि यह परिश्रम वे स्वयं करते हैं और अपनी समस्या अपने तरीक़ों से सुलझाते हैं। लेकिन स्कूल में पचास बार समझाने पर भी उनकी समझ में बात नहीं आती? उदाहरण के लिए क्यों हर अध्यापक को स्थानीय मान की अवधारणा समझाने के लिए इतना परिश्रम करना पड़ता है? वे सब बड़े जटिल प्रश्न हैं। इसका कोई सरल व सहज उत्तर हमारे पास नहीं हैं। लेकिन फिर भी इतना साफ़ है कि यदि ज्ञान–संरचना की प्रक्रिया को हम थोड़ा बहुत भी समझ पाएं तो हमें कक्षा में पढ़ाने व गतिविधियां व पुस्तकें बनाने में काफ़ी मदद मिलेगी। जंगल की मोटी–मोटी जानकारी हो तो रास्ते बनाने व खेमे गाड़ने सुगम हो जाते हैं।

सीखने की प्रक्रिया में हमें तीन चीज़ों के बारे में सोचना ही पड़ेगा–पर्यावरण, समाज व बच्चा। पर्यावरण में सब शामिल– पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, हवा, पानी, आग, आकाश, तारे आदि। समाज में माता–पिता, परिवार, दोस्त, अध्यापक आदि। हर समाज की अपनी संरचना होती है और अपनी संस्कृति और मूल्य। बच्चे के शरीर का हर अंग सीखने की प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शायद दिमाग़। दिमाग़ तो शरीर का ही हिस्सा है फिर भी अलग क्यों? शरीर में पहुंचनेवाली हर संवेदना दिमाग़ में जाती है और दिमाग़ ही शरीर को अलग–अलग निर्देश देता है। ज्ञान की संचरना की छवियों व नियमों के बारे में दिमाग़ ही शरीर को अलग–अलग निर्देश देता है। ज्ञान की संरचना की छवियां व नियम भी दिमाग़ में ही बनते हैं न कि हाथ व पैर में। कुछ ज्ञान के क्षेत्रों का तो शिशुकाल में ही इतना विकास और विस्तार हो जाता है कि हम यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि शायद कुछ विशेष तरह का ज्ञान जन्मजात है। संभव है कि सीखने की कुछ क्षमताएं शरीर व पर्यावरण से स्वतंत्र हो। भाषा को लेकर यह प्रश्न अक्सर चर्चा का विषय बना रहता है। क्योंकि 2 साल का बच्चा भाषा की दृष्टि से वयस्क हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह अपनी भाषा के सभी शब्द जानता है। वह तो कोई भी नहीं जानता। यही कि वह अपनी भाषा की संरचना के नियम जानता है। और नियम जानने का यह अर्थ नहीं कि वह एक भाषा–वैज्ञानिक की तरह व्याकरण के नियमों पर चर्चा कर सकता है। केवल यही कि उसे सही व गलत वाक्य की पहचान हो जाती है। वह नित असंख्य नये वाक्य बोलता व समझता है। और यह तब तक संभव नहीं है जब तक स्वयं के दिमाग़ में कुछ नियम न हो। क्या हमारे दिमाग़ में कोई अंग है जो केवल भाषा के लिए ही बना है? जैसे आंखे देखने के लिए व कान सुनने के लिए आदि।

लेकिन अधिकतर ज्ञान तो पर्यावरण, समाज व दिमाग़ के आपसी क्रियाकलाप व तालमेल से ही बनता है व व्यवस्थित होता है। बच्चा निरन्तर अपने आस–पास की दुनिया को समझने की कोशिश करता रहता है। देखने, सूंघने, चखने, छूने व सुनने की इन्द्रियों के माध्यम से संदेश निरन्तर हमारे दिमाग़ में पहुंचते रहते हैं। कुछ देखकर या सुनकर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिए दिमाग़ शरीर को आदेश देता है। पर्यावरण से संदेश आने व दिमाग़ को उन्हें संजोकर आदेश देने की क्रिया–प्रक्रिया अत्यधिक जटिल होती है। अनुमान लगाइये उस बच्चे के दिमाग़ पर क्या गुजरती होगी जो अपने बिस्तर पर लेटा एक साल की उम्र में बाहर देख रहा है– हजारों तरह

के छोटे–बड़े पेड़–पौधे, न जाने कितने रंगों के और उनके बीच अनेक तरह के पक्षी, सामने कहीं कार तो कहीं ट्रक आदि। लेकिन खाली संदेश–आदेश से बात बन जाती तो समस्या काफ़ी सरल व सहज होती। बच्चे का सीखना भी सरल होता और एक समझदार कम्प्यूटर बनाना भी।

असली काम तो दिमाग़ को करना हैं असंख्य प्रकार की जानकारी को कुछ ऐसे व्यवस्थित तरीक़े से सजाना कि बात एक बार में समझ में आ गई तो फिर दोहराने की आवश्यकता नहीं। ख़ुदा जाने बच्चा कितने प्रकार के कुत्ते देखता है। शुरू में एक कुत्ता कहता है। और फिर अचानक एक दिन गाय, बैल, बिल्ली को भी कुत्ता कहता है। और फिर अचानक एक दिन गाय, बैल, बिल्ली व कुत्ते को पहचानने में कोई ग़लती नहीं करता। सारी उम्र कभी नहीं करता को हम सब जानते हैं कि कोइ भी दो कुत्ते पूरी तरह से एक समान नहीं होते।

बच्चे के ज्ञान को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को हम कुछ हद तक समझ सकें तो शायद बहुत लाभ हो। लगभग 16 महीने के शेखर को ही देखिए। अपने आस–पास के तरल पेय पदार्थों की दुनिया को उसने किस ख़ूबसूरती से व्यवस्थित किया है। लगता है उसने सबसे पहले 'पानी' को अन्य चीज़ों से अलग किया होगा, फिर 'पानी' व 'थम्ज़–अप' को। यह साफ़ है कि यह हमारी दुनिया के चाय–पानी नहीं है। यह शेखर की दुनिया के चाय–पानी हैं उनके मायने अलग हैं। उनकी छवियां अलग हैं। उनका दिमाग़ में वर्गीकरण अलग है। शेखर के दिमाग़ ने अपने शरीर के माध्यम से अपने पर्यावरण व समाज के साथ जूझते हुए यह खाका बनाया है। यह खाका सही या ग़लत के पैमाने पर नहीं आंका जा सकता। यह सीखने की प्रक्रिया का एक ख़ास–हिस्सा है। इस प्रक्रिया में हर गांव एक मंज़िल है। अपने आप में नियमबद्ध व सुसंरचित। सभी बच्चे पर्यावरण के जंगलों से गुज़रते वक़्त ऐसे–ऐसे खाके बनाते हैं और कुछ समय के लिए उपयुक्त स्थानों पर अपने खेमे गाड़ते है। आपकी बनाई पगडंडी पर ही वे चलें यह ज़रूरी नहीं। आप ज़बरदस्ती उन्हें किसी तौर–तरीक़े से सिखाने की कोशिश करेंगे तो आपको ही निराशा व खेद होगा। यह भी साफ़ है कि कैसा खेमा कहां, कब, कितनी देर लगेगा, यह निश्चय भी आप के लिए हर वक़्त करना संभव नहीं शायद।

लगभग 16 माह के शेखर की दुनिया का एक हिस्सा

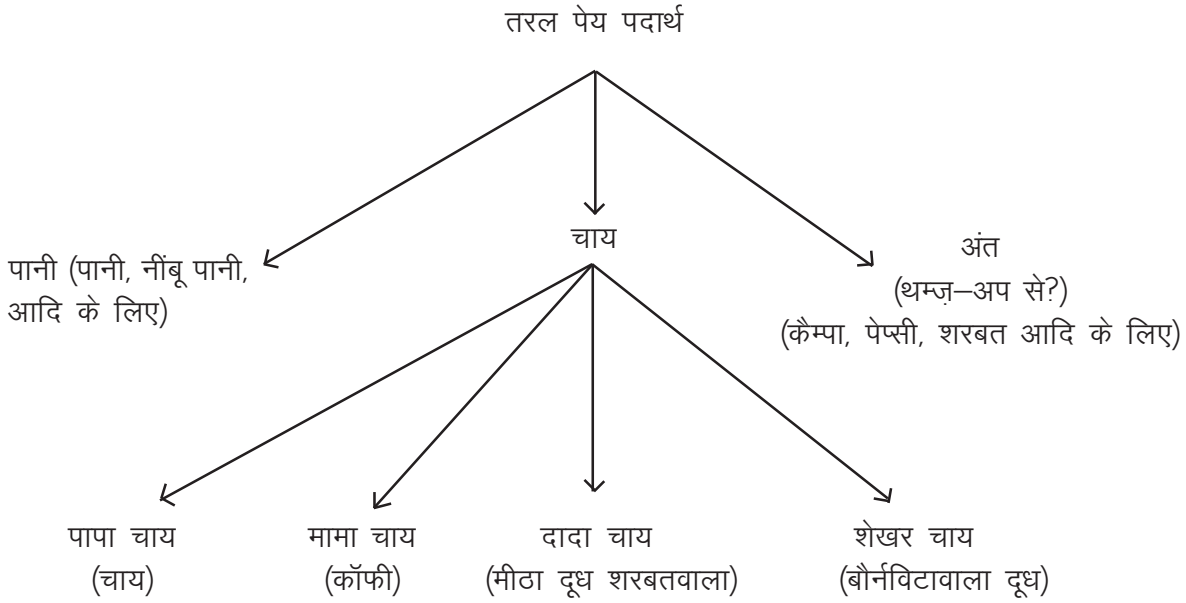

अन्ततः बच्चे को ये सभी शब्द, उनका उच्चारण, उनका व्याकरणिक प्रयोग व उनसे जुड़ी अवधारणाएं– सभी सीखना है। 'चाय', 'कॉफी', 'दूध' आदि को अलग–अलग सीखना है। अभी उसके लिए पीनेवाला अधिक महत्त्वपूर्ण है, पेय पदार्थ का नाम नहीं। मुख्यः बात यह है कि

1. उसने यह व्यवस्था स्वयं बनाई है बिना किसी की मदद के। यानी अपने पर्यावरण से उसे जो मदद मिलती है उसमें यह सुगठित संरचना दूर–दूर तक नहीं। किसी ने उसे यह संरचना दिखाई नहीं हैं।

2. यह व्यवस्था नियमबद्ध है, इसकी संरचना को हम पहचान सकते हैं।

3. अपने तरीक़े से पर्यावरण से निरन्तर मदद लेते हुए यह संरचना बच्चा स्वयं बदलेगा।

4. हमारे दृष्टिकोण से संरचना में 'त्रुटियां' हैं। 'कॉफी' को 'चाय' (मामा–चाय) कहना ठीक नहीं, पर इस संचरना में तर्कसंगत है– बच्चे के दृष्टिकोण से।

गणित की दुनिया में भी आपको ऐसे कई उदाहरण मिल जायेंगे। किसी सवाल को हल करने के कई तरीक़े व उत्तर, जिन्हें हम लाल कलम से काटकर किनारे कर देते हैं, बच्चे के तर्कसंगत ज्ञान का परिचायक हो सकते हैं। तीसरी कक्षा की एक बच्ची को कुछ जोड़, बाक़ी, व गुणा के सवाल दियेः

26	46	508	58	69	25
+25	−38	−219	×7	×8	+26
411	614	627	35	48	411

यह साफ़ है कि यह बच्ची एक अंकीय जोड़ व गुणा के सवाल आसानी से कर लेती है। अभी उसे 'बाक़ी' की दुनिया की समझ ठीक से नहीं। बाक़ी के प्रश्नों में भी यह एक अंकीय जोड़ ही करती है और गुणा के प्रश्नों में एक अंकीय गुणा। आगे आप ख़ुद सोचिए। माता–पिता, अध्यापक व पाठ्यक्रम के लिए इन बातों का क्या महत्त्व है। क्या बच्चों को अपने हल विकसित करने की अधिक जगह मिलनी चाहिए? कैसे?

भाषा की दुनिया में तो ऐसे उदाहरण आये दिन मिलते हैं। दो–तीन साल का बच्चा पूरी तरह से अपनी भाषा की संरचना को 'जानता' है, उसे हर तरह के पड़ावों से होकर गुज़रना ही पड़ता है। हर पड़ाव अपनी अलग तर्कसंगत व्यवस्था। वयस्क–मंजिल सदैव सामने पर उसके बदलने की संभावना निरन्तर बनी हुई, दोनों के द्वारा बच्चा जो उस ओर बढ़ रहा है और वयस्क जो उसका प्रयोग कर रहा है। एक प्रश्न तो सदैव हमारे सामने खड़ा रहता है। व्याकरण की विषमताओं व जटिलताओं के बारे में कोई भी व्यक्ति 'सचेत' नहीं होता यानी उनके बारे में कुछ कह नहीं सकता, चर्चा नहीं कर सकता। फिर भी हर बच्चा उन जटिलताओं को कैसे पकड़ लेता है। ज़रा सोचिए 'मैं रोज एक लाल सेब खाता हूं', 'मैं मीठी लस्सी पीती हूं' आदि जैसे साधारण वाक्य बोलने में कैसा जटिल ज्ञान समाहित है। कुछ अन्य वाक्य देखिए (' = व्याकरण के अनुसार अमान्य)

1. मेरे दो कान हैं।

   (* कान हैं। * मुझे दो कान हैं। * मेरे पास दो कान हैं।)

2. मेरे दो भाई हैं।

   (* मैं दो भाई हूं। * मुझे दो भाई हैं। * मेरे पास दो भाई हैं।)

3. मेरे दो नौकर हैं।

   (* मैं दो नौकर हूं। * मुझे दो नौकर हैं। * मेरे पास दो नौकर हैं।)

4. मेरे पास दो कुत्ते हैं।

   (* मैं दो कुत्ते हूं। * मुझे दो कुत्ते हैं। * मेरे दो कुत्ते हैं।)

5. मुझे बुखार है।

   (* मैं बुखार हूं। * मुझमें बुखार हैं। * मेरे बुखार हैं।)

6. मुझमें कई गुण हैं।

   (* मैं कई गुण हूं। * मुझे कई गुण हैं। * मेरे कई गुण हैं।)

सभी वाक्य 'मेरे अपने पास कुछ होने' के बारे में हैं इनकी संरचनाओं में क्या अंतर है? क्या यहां कोई नियमबद्ध व्यवस्था है? क्या बच्चे 3–4 साल की आयु के बाद कोई वाक्य बोलते हैं? क्यों नहीं?

ध्वनि के क्षेत्र के पड़ाव देखिए। हर भाषा में बच्चे पहले ''पापा, बाबा, मामा, मामी, दादा, दादी, मामू, चाचू' जैसे शब्द बोलते हैं। यानी हर भाषा में स्वरों के स्तर पर पहला व्यवस्थित पड़ाव :

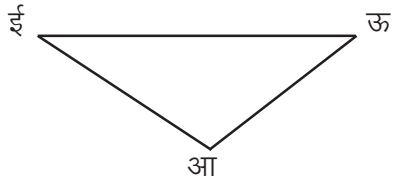

और व्यंजनों के स्तर पर 'प–ब–म' अंतर आदि। REP–1 और 2 से आप जानते ही हैं कि 'प–ब–म' में क्या अंतर होता है। इस अंतर की जटिलता को पकड़ना आसान नहीं। फिर भी यह भी सच है कि ये सबसे अधिक 'नज़र आनेवाली' ध्वनियां हैं। क–ख–ग–घ के बारे में हम क्या कहें?

क्या बच्चे में सभी ज्ञान अंतर्निहित रहता है, जैसे– सुकरात या प्लेटो और अन्य कई विद्वान् मानते हैं। पर्यावरण की हल्की सी चिंगारी लगी और संपूर्ण ज्ञान प्रजवलित हो उठता है या बच्चा सभी कुछ अपने पर्यावरण से सीखता है और उसका दिमाग़ शुरू से लगभग एक साफ़ स्लेट सा होता है। या फिर ये कि बच्चा सीखने की काफ़ी क्षमताएं लेकर पैदा होता है और अपने पर्यावरण से निरन्तर बातचीत करता हुआ ज्ञान की संरचना करता है। क्या भाषा को एक अलग तरह की क्षमता व ज्ञान मानना आवश्यक है?

यह भी समझना आवश्यक है कि ज्ञान की संचरना किसी 'खालीपन' में नहीं होती। हर तरह के ज्ञान की अपनी एक ऐतिहासिक, राजनैतिक व सामाजिक पृष्ठभूमि होती है हालांकि कुछ विद्वानों का मानना है कि भाषा के ज्ञान का इतिहास व समाज से कुछ विशेष लेना–देना नहीं। उदाहरण के लिए 1963 में ग्रीनबर्ग नाम के भाषावैज्ञानिक को पांच महाद्वीपों की 30 दूर–दराज भाषाओं का निरीक्षण किया। इनमें स्वाहिली, बास्क, हिब्रू, जापानी, मलय, तुर्की व हिन्दी भी शामिल थी। उन्होंने पाया कि सभी भाषाओं में :

(क) कर्त्ता, क्रिया व कर्म की अवधारणा है।

(ख) क्रम या तो 'कर्त्ता–कर्म–क्रिया' (हिन्दी) है या फिर कर्त्ता–क्रिया–कर्म (अंग्रेज़ी)।

(ग) पहली संज्ञा अक्सर कर्त्ता होती है।

(घ) यदि क्रम कर्त्ता–क्रिया है तो भाषा में निश्चित विभक्ति संज्ञा के बाद यथा 'मेज़ पर'। यदि क्रम 'कर्त्ता–क्रिया–कर्म' हैं तो विभक्ति संज्ञा से पहले यथा "on the table."

(च) हर भाषा में कर्त्ता व क्रिया में संबंध दिखाने के स्पष्ट तरीक़े।

(छ) संबंध दिखानेवाले अंश सदैव नये शब्द बनानेवालों अंशों के बाद यथा–घर–घरवाला–घरवाले। ' घरेवाला नहीं। ' घरेवाले भी नहीं।

यही बहुत बड़ी बात है कि भाषा के क्षेत्र में एक 'सर्वव्यापक व्याकरण' की तलाश जारी है और रोज़ उसके नये–नये प्रमाण सामने आते हैं। 'जगह की समझ' को लेकर भी काफ़ी शोध चल रहा है।

ख़ैर अगर यह मान भी लें कि भाषा सीखने की क्षमता हर बच्चे में आत्मजात होती है फिर भी उसे भाषा तो अपने समाज से ही सीखनी होती है। और उस सीखने की प्रक्रिया के साथ केवल ध्वनि, शब्द व वाक्य संरचना ही नहीं जुड़े। बच्चे को उसके सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष भी सीखने होते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बच्चा संरचनात्मक व सामाजिक पहलू अलग–अलग नहीं सीखता। जो बच्चा 'तू–तुम–आप' जैसे शब्द सीखता है वह यह भी सीखता है कि इन शब्दों का प्रयोग कहां और कैसे करना चाहिए।

बच्चे को पढ़ना–लिखना व गणित सिखाना हमारी मुख्य समस्याएं रहती हैं। एक तरफ़ तो हमें लगता है कि बिना पर्यावरण से विशेष मदद लिए बच्चा काफ़ी जटिल ज्ञान की संरचना कर लेता है। दूसरी तरफ़ स्कूल में हम अपने आपको अध्यापक–किताबों–कक्षा आदि के रहते भी काफ़ी विवश पाते हैं। अगर थोड़ा ध्यान से सोचें तो हम अनुभव करेंगे कि ऐसा नहीं है कि पर्यावरण से बच्चा मदद नहीं लेता पर वह मदद स्वेच्छा से जब चाहता है लेता है। जाने–अनजाने में बच्चों को यह जगह मिलती है जहां वे निरन्तर नई परिकल्पनाएं बनाते रहते हैं और उन पर प्रयोग करते रहते हैं। जैसे ही कोई अटपटा उदाहरण मिला वे अपनी परिकल्पना में कुछ फेर–बदल करते हैं। परिवार, रिश्तेदारों और मित्रों का स्नेहपूर्ण व्यवहार, शिशु का लोगों के ध्यान का मुख्य बिन्दु होना, छोटी–छोटी बात पर उसकी प्रशंसा होना, खेल–खेल में वह जो पढ़ता–लिखता है उसको समझने की कोशिश करना आदि यह सब शायद सीखने की प्रक्रिया के मुख्य अंग हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि बच्चे के साथ हम जो बातचीत करते हैं, क्रिया–कलाप करते हैं–उनके लिए सार्थक होते हैं।

स्कूलों में बच्चों के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या हो ताकि ज्ञान की संरचना कुछ सुलभ हो सके:

1. बच्चे मिट्टी का पुतला हैं या एक साफ़ स्लेट! उन्हें अच्छे नागरिक की छवि में ढालने का प्रयास करना चाहिए।
2. बच्चे सब कुछ पहले से ही जानते हैं। अध्यापक विश्राम करें।
3. बच्चों में ज्ञान को व्यवस्थित करने की अच्छी–ख़ासी क्षमता होती हैं। उसका लाभ उठाना चाहिए। कैसे?
4. भाषा सीखने की क्षमता क्या अनूठी है?
5. दिमाग़ के बारे में क्या मानकर चलें? शरीर के संदर्भ में क्या करें? पर्यावरण का प्रयोग कैसे करें? समाज से क्या सहयोग लें?

रमा कांत अग्निहोत्री : दिल्ली विश्वविद्यालय में भाषावैज्ञानिक हैं। विद्या भवन सोसायटी के साथ गहरा जुड़ाव।

भाषा की प्रकृति एवं संरचना

प्रो. राजेन्द्र सिंह से बातचीत के कुछ अंश

*मांट्रियल विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञानी प्रो. राजेंद्र सिंह से जब भी वे विद्याभवन आए उनसे भाषा की संरचना और उसकी तासीर को समझने के लिए अनौपचारिक रूप से बातचीत होती रही हैं। तब विद्या भवन ने सोचा कि क्यों न प्रो. राजेंद्र सिंह के भाषा संबंधी विचारों को लिपिबद्ध किया जाए। इसी तारतम्य में उनसे भाषा की संरचना को लेकर कुछ सटीक सवालों पर आधारित साक्षात्कार लिया गया। इस साक्षात्कार का मक़सद भाषा के उद्भव और उसके विकास को समझना है। शुरुआत में एक साथ कई सारी भाषाएं जन्मी या फिर केवल एक भाषा थी? क्या भाषा का विकास धीरे–धीरे हुआ या अचानक? क्या भाषा के विकास में शारीरिक संरचना का भी कोई योगदान है? इन सवालों से प्रारंभ करके हम यह भी समझना चाहते हैं कि आखिर बच्चा भाषा कैसे सीखता है? क्या और भी जंतु भाषा का उपयोग करते हैं? इन सब सवालों पर केंद्रित एक पुस्तक **भाषा : प्रकृति एवं संरचना** का प्रकाशन विद्या भवन सोसायटी की ओर से किया गया है। यहां प्रस्तुत है पुस्तक के कुछ अंश –*

प्रश्न :

प्रो. सिंह, सबसे पहले हम आपसे उस विषय पर प्रश्न करना चाहेंगे जिसके बारे में अक्सर सवाल उठता है – भाषा का मूल क्या है? किस प्रकार उसका जन्म हुआ? आम तौर पर इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि या तो कई भाषाएं एक साथ जन्मीं या फिर केवल एक भाषा थी (जो बाद में कई भाषाओं में बंट गई)। क्या भाषा का धीरे–धीरे विकास हुआ था या वह अकस्मात् मानव मस्तिष्क में पैदा हो गई? इस बारे में कृपया विस्तार से बताएं।

राजेन्द्र सिंह :

मेरे विचार में आज उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर पहली चीज़ तो यह कही जा सकती है कि भाषा मानव प्रजाति तक ही सीमित है, आदान–प्रदान (संचार) की इतनी जटिल प्रणाली किसी भी और प्रजाति में नहीं पाई गई है। इस कथन के बाद हम विकासवादी विज्ञान की मदद ले सकते हैं। एन्ड्रयू कारस्टेअर्स–मैकार्थी* (1999)ने हाल ही में इस विषय के बारे में हुए शोध की समीक्षा की है। उनका कहना है कि भाषा का जन्म और विकास मानव–मस्तिष्क के आकार में वृद्धि के साथ–साथ हुआ।

यह तब हुआ जब होमो सेपिअंस ने अपना आदिम, कंद–मूल पर निर्भर जीवन छोड़, मांस खाना प्रारंभ किया। इससे उसके मस्तिष्क के आकार में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई, साथ ही उसके वाग्यंत्र में कुछ बदलाव भी हुए। कारस्टेअर्स–मैकार्थी का अनुमान है कि उस समय का मनुष्य ध्वनिसमूहों का उच्चारण लयबद्ध तथा अधिक्रमक रूप में करता था जो कि अक्षर (Syllable) की उत्पत्ति मानी जा सकती है। स्वर और व्यंजनों की लयबद्ध अभिरचना का प्रयोग बड़े आकार के मस्तिष्क द्वारा विचारों के आदान–प्रदान के लिए किया गया। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप कालांतर में भाषा का पूर्ण विकास हुआ। मेरा मानना है कि उनका अनुमान मूलतः सही है।

किसी भी भाषा के विकसित होने के क्रम में सबसे पहले आता है एक समृद्ध शब्दकोश – जैसे–जैसे होमो सेपिअंस का सांस्कृतिक विकास हुआ, उनके द्वारा वांछित शब्दों की संख्या भी बहुत बढ़ गई। परिष्कृत वाग्यंत्र से संभव हुए लयबद्ध उच्चारण और शब्दों की प्रचुरता से जटिल संदेश बनने लगे जिनसे आगे चलकर उचित संज्ञा–पदबंध बने। वे आगे यह प्रमाणित करते हैं कि विश्व में आज भी कई भाषाएं हैं जिनमें केवल संज्ञा–पदबंध हैं और पुनरावर्तिता (Recursiveness) या अंतःस्थापन (Embedding) जैसी कोई चीज़ नहीं हैं, वाक्य के अन्दर वाक्य स्थापित करने की इस प्रक्रिया को संज्ञानात्मक (Cognitivist) विचारधारा में भाषा का अभिन्न हिस्सा माना जाता रहा है। कारस्टेअर्स–मैकार्थी एक मुद्दा और उठाते हैं – वह यह कि कुछ संचार प्रणालियां ऐसी हैं जिन्हें भाषाओं का दर्जा मिलना चाहिए जबकि उनमें अंतःस्थापन अनुपस्थित है। मैं उनके इस अनुमान से भी सहमत हूं कि वाक्यों का संज्ञा–पदबंधों में बदला जा सकना और दूसरे वाक्यों में अंतःस्थापन उतना ज़रूरी नहीं है जितना कि समझा जाता है।

पारम्परिक रूप से भाषाविज्ञान में इसका उदाहरण 'चाइनीज़ बॉक्स' (चीनी डिब्बा) रहा है। एक डिब्बे में दूसरा डिब्बा, दूसरे में तीसरा, तीसरे में चौथा और क्रमशः रहता है इसी तरह वाक्यों के अंदर दूसरे वाक्य लगाना ''होमो सेपिअंस'' के वाग्यंत्र में हुए नए बदलावों और उसके समय में निरंतर बढ़ती सांस्कृतिक जटिलताओं के कारण, उपलब्ध लयबद्ध उच्चारण की संभावनाओं का संदोहन था। मेरे अनुसार, जो बात उन्होंने उठाई है वह सही है, चाहे कुछेक अनुमान सही हो या नहीं। मैं यह भी मानता हूं कि उनका क्रमवार प्रगति का दावा सही है। इसमें हर चरण एक धीमा चरण था। मार्क्स द्वारा उठाए गए उस पुराने प्रश्न की तरह, जो हर मीमांसात्मक कार्य की समस्या है– किस प्रकार छोटे मात्रात्मक बदलाव गुणात्मक बदलाव लाते हैं। प्रतीत होता है कि भाषा के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। मतलब होमो सेपिअंस के वाग्यंत्र, शब्दकोश और सांस्कृतिक– व्यावहारिक परिवेश में हुए छोटे, क्रमवार बदलावों से अंततः आज ख़ास तौर से इंडो–यूरोपीयन भाषाओं में देखी जा सकने वाली जटिलताओं का निर्माण हुआ। यहीं पर भाषाविज्ञान ने इसका गहनता से अध्ययन किया है और यह विकास सांस्कृतिक जटिलता, बातचीत की आवश्यकताओं, शब्दकोश के आकार, वाग्यंत्र में हुए बदलावों और मस्तिष्क के आकार में हुई महत्त्वपूर्ण वृद्धि का अभिसरण है। मेरे हिसाब से यही सबसे बढ़िया उत्तर है।

*ऐन्ड्रयू कारस्टेअर्स–मैकार्थी क्रम विकास और भाषा के विकास का प्रकार्यवादी दृष्टिकोण रखते हैं। चौम्स्की के विपरीत उनका मत है कि भाषा एक धीमी विकासक्रमिक प्रक्रिया का परिणाम है न कि एक आकस्मिक घटना का। यह मानव के द्विपाद होने के बाद हुए स्वरयंत्र के विकास से हुआ। इससे हमारे पूर्वजों द्वारा निकाली जा सकनेवाली ध्वनियों में वृद्धि हुई जिससे, कारस्टेअर्स–मैकार्थी कहते हैं, वाक्यविन्यास का विकास हुआ।

ज़ाहिर है कि अन्य मत भी हो सकते हैं जैसे कि चौम्स्की का। चौम्स्की भाषा–क्षमता की उत्पत्ति को होमो सेपिअंस के उत्थान से जुड़ा हुआ मानते हैं, मतलब यह कि दोनों एक ही समय साथ–साथ हुए जबकि दूसरी सोच में यह मानकर चलना ज़रूरी नहीं कि भाषा और मानव प्रजाति का विकास एक साथ हुआ। मुझे चौम्स्की से कोई व्यक्तिगत रोष नहीं है। अधिकतर भाषा संबंधी अटकलों को दो खेमों में बांटा जा सकता है। एक तो है चौम्स्कीवादी, यानीकि एक झटके में हुआ आकस्मिक विकास। दूसरा है प्रकार्यवादी (Functionalist) विचारधारा का जिसके अनुसार भाषा घुरघुराने से शुरू होती है। फिर लोग अपनी दिनचर्या से जुड़ी अर्थपूर्ण, लयबद्ध ध्वनियां निकालते हैं और अंत में, यह मानव भाषा का रूप ले लेती है। हॉकेट (1958) और शायद जैस्परसन भी कुछ–कुछ यही मानते थे।

वर्तमानकालिक प्रमाण भी यही सुझाते हैं कि हॉकेट या उनके जैसे सिद्धान्तों (मतलब घुरघुराना इत्यादि) में कुछ सच्चाई है। कारस्टेअर्स–मैकार्थी और उनके जैसे व्यक्तियों के योगदान से इस विचारधारा का सशक्तीकरण हुआ है कि किस प्रकार कठिन परिश्रम की स्थितियों में निकली घुरघुराने की ध्वनियां जटिल अभिव्यक्तियों में बदल गईं क्योंकि इस समय तक होमो सेपिअंस का व्यावहारिक परिवेश समृद्ध हो गया था। इस विषय में सैद्धांतिक वाद–विवाद का मुद्दा जो कि भाषा के जन्म से सीधा जुड़ा हुआ है और उसे समझने में मददगार हो सकता है वह यह है कि क्या भाषा और बातचीत (संचार) मूलभूत रूप से जुड़े हुए हैं? ऐसा आभास हममें से कई लोगों को होता आया है, ख़ास तौर से प्रकार्यवादी विश्लेषणों में। इसके विपरीत चौम्स्की, पिआजे आदि भाषादार्शनिकों का मानना है कि इन दोनों में कोई संबंध नहीं है। भाषा केवल क्रीड़ा–वस्तु है और मनुष्यों द्वारा भाषा का संप्रेषण के लिए प्रयोग एक संयोग ही है। भाषा क्या करती है या भाषा क्या करने के लिए बनाई गई है, इस विषय पर एक विवाद है। मैं फिर दोहराता हूं कि दार्शनिकों का आम तौर पर यह मानना है कि भाषा का कोई औचित्य नहीं है। वह बस हमारे मनोरंजन के लिए है और उसका बातचीत में प्रयोग होना यह प्रमाणित नहीं करता कि उसका मूलभूत काम वही है। आजकल विकासवादी नृविज्ञान (Evolutionary Anthropology) का मानना यह है कि भाषा की उत्पत्ति मानव समुदाय में बातचीत कर सकने की प्रबल आवश्यकता के कारण हुई। आज भी वे भाषाएं जिनमें प्रायः इंडो–यूरोपीयन भाषाओं में पाए जानेवाले मुख्य लक्षण नहीं हैं उनका जैविक मूल भी बातचीत कर पाने की आवश्यकता में है। इस प्रकार्यवादी दृष्टिकोण का अवलोकन अब संभव है और यह जानना भी कि प्रकार्यवादी जब कहते हैं कि भाषा का आधार बातचीत है, तो उनका तात्पर्य क्या है?

प्रश्न :

कारस्टेअर्स–मैकार्थी की ओर वापस चलते हैं। उनका विचार है कि होमो सेपिअंस अपने पैरों पर चल सकते थे और इस कारण उनके वाग्यंत्र का विकास हुआ। शब्दकोश का विकास सही और सटीक ढंग से बातचीत करने के लिए आवश्यक था। विकासवादी नृविज्ञान का यह सिद्धान्त आप एक प्रकार से बच्चे में पुनर्निर्मित होता हुआ देख सकते हैं, पर यह सब काफ़ी जटिल है। चौम्स्की इसके उत्तर में कहते हैं कि भाषा की पूरी जानकारी बहुत छोटे समय में पैदा हो जाती है। एक साल से कुछ कम समय में बच्चे काफ़ी जटिल अभिव्यक्ति में सक्षम हो जाते हैं। प्रकार्यवादियों का इस बारे में क्या कहना है?

राजेन्द्र सिंह :

आपका कहना ठीक है, मेरे विचार में कारस्टेअर्स–मैकार्थी इस संबंध को अवश्य दिखलाते हैं और यह जानकारी पुरानी है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि एक बच्चे का प्रारम्भिक विकास पूरे मानव विकास की पुनर्रचना ही है। यह सम्बन्ध जातिवृत्तीय परिवर्तन (Phylogeny) और व्यक्तिवृत्तीय परिवर्तन (Ontogeny) के बीच का संबंध है।

प्रश्न :

परन्तु यदि हम कारस्टेअर्स–मैकार्थी की विचारधारा स्वीकार कर लें तो इस संपीड़न को किस प्रकार समझें? प्लेटो के प्रश्न (Plato's Problem) का उत्तर कैसे दिया जाए?

राजेन्द्र सिंह :

इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि आप किस विचारधारा के समर्थक हैं, चाहे चौम्स्कीवादी हों या कारस्टेअर्स–मैकार्थी की। जातिवृत्तीय परिवर्तन और व्यक्तिवृत्तीय परिवर्तन पर भी कोई असर नहीं पड़ेगा। चाहे भाषा की उत्पत्ति कैसे भी हुई हो, हर शिशु अपनी प्रजाति का विकासक्रमिक इतिहास दोहराता है।

प्रश्न :

चौम्स्की का कहना है कि जब तक एक Language Faculty (LF, भाषा अवयव) की कल्पना नहीं की जाएगी, तब तक एक समृद्ध और जटिल व्याकरणिक व्यवस्था के अर्जन को नहीं समझा जा सकता।

राजेन्द्र सिंह :

चौम्स्की* के तर्क अपनी जगह ठीक हैं पर वे जातिवृत्तीय परिवर्तन और व्यक्तिवृत्तीय परिवर्तन के रूप–प्रतिरूप संबंध से स्वतंत्र हैं। चौम्स्की का तर्क है कि बच्चा सीमित तथ्यों के आधार पर भी भाषा अर्जित कर लेता है, मतलब, हमउम्र बच्चों या परिवार के सदस्यों के साथ सीमित, ज़्यादातर टूटे–फूटे वार्तालाप के आधार पर। इस सीमित सामग्री की आधारशिला पर वह अनगिनत नए, कभी न सुने या बोले गए वाक्य बना लेता है। चौम्स्की का मानना रहा है कि इस कारण से बच्चे में एक ऐसा अवयव होना चाहिए जो सीमित भाषा के आधार पर एक आंतरिक व्याकरण का निर्माण करता हो। उनके अनुसार यही एक तरीका है। मानव मस्तिष्क में एक ऐसा यंत्र, यानीकि LF, जो केवल भाषा के विश्लेषण के लिए हो। जिस समय चौम्स्की ने यह बात पहली बार कही उस समय भाषा अर्जन व्यवहारवाद–अनुभववाद (बी.एफ. स्किनर, आदि) के प्रकाश में देखा जाता था। चौम्स्की के अनुसार भाषा अर्जन व्यवहारवादी सिद्धांतों से मेल नहीं खाता, जिसका मतलब है कि भाषा बच्चे में अंतर्जात होती है। हमारे अधिगम सिद्धांत (Learning Theory) परिष्कृत हो सकते हैं पर फिर भी वे भाषा अर्जन को सीमित तौर पर ही समझा पाएंगे।

चौम्स्की ने तर्क दिया कि यह मानना ही पड़ेगा कि एक LF है। इस बारे में विचार दो तरह से किया जा सकता है। चौम्स्की दो तरह के कारणों से सही या गलत हो सकते हैं। मान लीजिए हम एक अत्यन्त परिष्कृत अधिगम सिद्धांत का निर्माण कर लेते हैं। तब हम दिखा पाएंगे कि चौम्स्की का यह तर्क कि भाषा अर्जन मस्तिष्क के किसी 'चमत्कारी' LF से होता है, गलत है। दूसरा तरीका है यह दिखाना कि 2 वर्ग मि.मी. का वह अवयव (या LF) अनन्य रूप से भाषा के लिए समर्पित नहीं है। परन्तु एक वैज्ञानिक परिकल्पना को कैसे जांचा जाए? चौम्स्की की परिकल्पना को जांचने का एक तरीका है कि उसे इन वैकल्पिक दृष्टिकोणों से देखा जाए। दूसरा यह पता लगाया जाए कि क्या सच में हमारी प्रजाति के इतिहास में ऐसा एक क्षण था जब यह LF हमारे मस्तिष्क में प्रविष्ट हो गया। इन विकल्पों पर काम पहले हुआ है। पिआजे और बारबरा इनहैल्डर (1958) के पदचिह्नों पर लोगों ने अधिक परिष्कृत वैकल्पिक अधिगम सिद्धांत विकसित करने के प्रयास किए हैं। स्किनर आदि के उद्‌गमों से अधिक परिष्कृत। एक और नया सिद्धांत है समांतर वितरित प्रक्रमण (Parallel Distributed Processing) जिसके अनुसार मस्तिष्क को एक अकेले कम्प्यूटर की बजाय 25 या 40 समांतर कम्प्यूटरों के समूह के रूप में देखना चाहिए, मतलब यह कि मस्तिष्क देखने, बोलने आदि काम इन समांतर कम्प्यूटरों की मदद से एक साथ एक ही समय में संसाधित करता है।

मैं किसी सिद्धांत की सफाई नहीं दे रहा हूं, बस यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि चौम्स्की के सिद्धांत को परखने का एक तरीक़ा है। अधिक परिष्कृत अधिगम सिद्धांतों का निर्माण कर यह दिखा देना कि जिन गुणों का श्रेय LF को दिया जाता है वे असल में उन अधिगम सिद्धांतों के अन्तर्गत समझे जा सकते हैं। इस दिशा में कुछ सफलताएं

** नोम चौम्स्की ने प्रस्तावित किया है कि मनुष्यों में भाषा के विकास समझने का एक ही तरीका है – एक ऐसे भाषा क्षमता यंत्र की कल्पना करना जो केवल मनुष्यों में होता है। हालांकि चौम्स्की यह स्पष्ट नहीं करते कि LF किस विकासक्रमिक प्रक्रिया से जन्मा, उनका मानना है कि यह यंत्र हमेशा से मानव मस्तिष्क का हिस्सा रहा है और वे आमतौर पर इस बाबत अटकलें नहीं लगाते।*

मिली भी हैं परन्तु चौम्स्की के तर्क का कुछ हिस्सा अभी भी मान्य है।

वाक्य विन्यास (Syntax) के क्षेत्र में चौम्स्की द्वारा प्रयुक्त संचलन (Movement) का समांतर वितरित प्रक्रमण में स्पष्टीकरण नहीं है। उनके अधिकतर तर्क वैकल्पिक रूप से समझे जा सकते हैं पर संचलन नहीं। आज भी मानव भाषाओं में पाया जानेवाला संचलन समांतर वितरित प्रक्रमण के द्वारा समझा नहीं जा सका। दूसरा तर्क : बच्चा हमेशा संरचनाधीन संक्रिया (Structure Dependent Operation) का ही चयन करता है, ऐसा क्यों है कि बच्चा कभी भी मस्तिष्क में व्याकरण का ऐसा नियम नहीं बनाता जो कहे "वाक्य के तीसरे शब्द के साथ ऐसा करो" या "पांचवें शब्द के साथ वैसा करो"। बच्चे कभी भी इस तरह के नियम नहीं बनाते। उनके मस्तिष्क में "सर्वनाम को शब्द के आगे (या पीछे) ले जाओ", इस तरह के नियम होते हैं। ये नियम हमेशा संरचनाधीन होते हैं, बजाय कि अनुक्रमिक (Linear) होने के। यहां मेरा ख़्याल है, चौम्स्की सही हैं। बच्चे जिन नियमों का निर्माण करते हैं वे अधिक्रमक होते हैं। एक तरीका है ऐसे अधिगम सिद्धांत का निर्माण करना जो इसका स्पष्टीकरण दे सके।

दूसरा है कारस्टेअर्स–मैकार्थी के तथ्यों पर विचार। जर्मनी के Max Planck Institute of Evolutionary Anthropology पर इस दिशा में अनुसंधान जारी है। इस उपक्रम का लक्ष्य यह देखना है कि किस प्रकार के विकल्प उपलब्ध हैं। LF के आकस्मिक प्रकट होने के अलावा क्या उत्तर हैं? हममें यह क्षमता कैसे आई? यह किस जैविक प्रक्रिया का परिणाम है? इन प्रश्नों के द्वारा लोगों ने चौम्स्की के विकल्प ढूंढ़ने के प्रयास किए हैं। यदि इन प्रश्नों के उत्तर नहीं भी मिले तो भी वे मान्य रहेंगे। ये विषय–वस्तु वैज्ञानिक और अनुभवमूलक हैं, धार्मिक नहीं। मेरा मतलब, चौम्स्की अपने विचारों से ऐसे जुड़े हुए हैं जैसे वह उनका धर्म हो और बाक़ी लोग भी अपने विचारों से ऐसे ही जुड़े हुए हैं। हममें से वे लोग जो ऐसा नहीं मानते, उनके लिए कई आकर्षक विचार उपलब्ध हैं और हमें उस दिन की राह देखनी चाहिए – और मैं देख भी रहा हूं – जब सारे विचार एक साथ मिल जाएंगे। चौम्स्की के योगदान को नकारा नहीं जा सकता परन्तु उनके दावे को सही परिप्रेक्ष्य में रखना पड़ेगा। मेरे लिए तो यह एक सतत अनुभवमूलक विवाद है, धर्म का अडिग सिद्धांत नहीं।

प्रश्न :

यह कहना आसान है कि भाषा एक 2 वर्ग मि.मी. के टुकड़े के अकस्मात् आने से पैदा हो जाती है परन्तु शब्दकोशों और वाक्यविन्यासी संरचनाओं की भिन्नता का क्या होगा?

राजेन्द्र सिंह :

चौम्स्कियाई पद्धति में इसका उत्तर देना आसान है। खुद चौम्स्की (और उनके कुछ अनुयायियों) का उत्तर सीधा और सरल है। उनका दावा है कि स्वयं LF में ऐसे कोई नियम या बाध्यताएं नहीं जैसे कि असल, प्राकृतिक भाषाओं में दिखाई देती हैं। LF में केवल उन बाध्यताओं का समुच्चय है जो बताती हैं कि किस प्रकार के नियम या व्याकरण नहीं हो सकते। उनका तार्किक मत कुछ इस प्रकार है: ''मानव भाषाओं की सबसे विशेष बात यह नहीं कि वे इतनी भिन्न हैं वरन् यह कि वे उतनी भिन्न नहीं जितनी हो सकती हैं।'' उनका मत हमेशा से यही रहा है। जो बात उन्हें प्रभावित करती है वह यह नहीं कि हिन्दी, हरयाणवी या बंगाली अंग्रेज़ी से इतनी अलग हैं पर यह कि जापानी और फ्रेंच उतनी अलग नहीं जितनी हो सकती हैं।

पिछले पचास सालों में चौम्स्कियाई उपक्रम की सकारात्मक उपलब्धियाँ भाषाओं की समानताओं पर ध्यान केन्द्रित करने से उभरी हैं। इनसे हमने काफ़ी सीखा है। यह जानकर आश्चर्य और हर्ष होता है कि सतही भिन्नताओं के बावजूद भाषाओं में कई आंतरिक समानताएं हैं। 1980 के दशक का एक पुराना उदाहरण, जिसको आज हम थोड़ा अलग तरह से समझते हैं, अध्यापन कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है पर नाटकीय भी। चौम्स्की के एक विद्यार्थी, शायद जॉन ब्रैज़नन, ने संसार की भाषाओं की प्रश्नवाचक व्यवस्थाओं में दिलचस्प लक्षण पाए थे। हिन्दी जैसी भाषाओं में प्रश्नवाचक शब्द कुछ ख़ास नहीं करता, मतलब 'कुछ' (Something) और 'क्या' (What) एक ही स्थान

पर प्रकट होते हैं। दूसरी तरफ अंग्रेजी जैसी भाषाओं में 'John bought something' का 'What did John buy?' बन जाता है। सो अंग्रेजी में कुछ (Something) और क्या (What) में 'दाएं से बाएं' वाला संबन्ध है। 1970 के दशक में यह पाया गया कि संसार की किसी भी भाषा में प्रश्नवाचक सर्वनाम अप्रश्नवाचक सर्वनाम की दाईं ओर नहीं पाया जाता। उस तरह की भाषा असंभव प्रतीत होती है। यह जानकारी काफ़ी दिलचस्प थी– मैं तो कहूंगा एक महत्त्वपूर्ण जानकारी थी। इससे पता चलता है कि भाषाओं में समानताएं होने पर भी कुछ सर्वमान्य बाध्यताएं हैं जिनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता, वरना यह समझना मुश्किल हो जाएगा कि क्यों ऐसी कोई भाषा नहीं जिसमें 'John bought what?' संभव हो (सामान्य प्रश्न की तरह ना कि प्रतिध्वनि प्रश्न की (Echo Question) तरह)।

प्रश्न :
इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि रंगों की पहचान करने वाला एक अवयव है जो रंगावली (Spectrum) को सीमित रखता है।

राजेन्द्र सिंह :
बिल्कुल।

प्रश्न :
वह मानव दृष्टि की संभावनाओं को सीमित करता है और इस प्रकार कि हम उसे संरचना पर लागू बाध्यता कह सकते हैं बजाय कि एक 2 मि.मी. के टुकड़े के गुण के।

राजेन्द्र सिंह :
हां, अवश्य।

प्रश्न :
जो बात हमें जाननी है वह यह है कि वह कौन–सी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कुछ सर्वमान्य बाध्यताओं के होते हुए एक समुदाय या व्यक्ति समुच्चय घुरघुराने से भाषा के परिष्कृत प्रयोग तक पहुंच जाता है। क्या बच्चा सच में जातिवृत्तीय परिवर्तन का पूरी तरह से पुनर्निर्माण करता है?

राजेन्द्र सिंह :
माफ कीजिए, परन्तु आपके संदेह का स्रोत क्या है?

प्रश्न :
क्योंकि हमारी प्रजाति की कुछ क्षमता चार साल के एक बच्चे की क्षमता से कहीं अधिक है, ऐसी कई परिष्कृत प्रोक्तियां (Discourse) हैं जो बच्चे को उपलब्ध नहीं होतीं। वे कौन–सी प्रक्रियाएं हैं जिनसे घुरघुराने की उस प्रारम्भिक अवस्था से भाषा की संभाव्यता प्रवृत्त होती है? बच्चे वाला सादृश्य इसका उत्तर नहीं देता।

राजेन्द्र सिंह :
चलिए, जो सवाल आपने उठाए हैं मैं उनको क्रमवार लेता हूं, यह दिलचस्प है कि आपने चौम्स्की की भाषाओं पर लागू बाध्यताओं की तुलना मनुष्यों के रंग प्रत्यक्षण (Colour Perception) से की, क्योंकि यह स्वयं चौम्स्की के पुराने उदाहरणों में से एक है। वे बहुधा दृष्टि की बात करते हैं और कहते हैं कि यदि बिल्ली की दृष्टि की जैविक संरचना मनुष्य से भिन्न है क्योंकि मनुष्यों की रंगावली कुछ बाध्यताओं के कारण सीमित है तो यह कल्पना मुश्किल नहीं कि उनकी भाषा पर भी कुछ बाध्यताएं लागू होती हैं। सो चौम्स्की भी आपसे एकमत होंगे कि वह बिल्कुल दृष्टि के समान है। तथ्य यह है कि मैं और आप केवल सात या नौ रंग देख पाते हैं। संख्या कुछ भी हो सकती है, बस यह मान लेते हैं कि हम कुछ सीमित रंग ही पहचान पाते हैं। चौम्स्की और मेरे ख़्याल में आप भी, यह तर्क देंगे

कि यह सीमा जैविक है। यही उनका तर्क भी है। इस बात में कोई मतभेद नहीं कि प्रश्नवाचक सर्वनाम का दाईं ओर न जा पाना और हमारा कुछ निश्चित रंग ही देख पाना समान है, दोनों जैविक रूप से निर्धारित हैं।

दूसरा मुद्दा आपने उठाया था प्रोक्तियों की जटिलता का। आपने कहा कि बच्चा पूरे मानव समाज की प्रोक्ति क्षमता और विविधता को प्रदर्शित नहीं कर सकता, इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें परिपक्वन योजना (Maturational Schedule) का सहारा लेना पड़ेगा। बात हो रही है जातिवृत्तीय परिवर्तन और व्यक्तिवृत्तीय परिवर्तन के बीच की खाई भरने की। यह महसूस किया गया कि हम अकेले सब कुछ प्रदर्शित नहीं कर सकते। ऐसा इसलिए क्योंकि जैविक विकासक्रम में संज्ञानात्मक विकास और व्यावहारिक संदर्भ में चीज़ें पहचानने की क्षमता तत्काल उपलब्ध नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्षण सीमित है, संज्ञान सीमित है और शरीर की क्षमताएं सीमित हैं। यहां हमें परिपक्वन योजना की आवश्यकता पड़ती है, सो आप जातिवृत्तीय परिवर्तन और व्यक्तिवृत्तीय परिवर्तन के साथ परिपक्वन योजना जोड़ देते हैं। मेरे विचार में परिपक्वन योजना होने के प्रमाण दिलचस्प और प्रासंगिक हैं, हिन्दी और अंग्रेज़ी को देखा जाए तो अलग–अलग तथ्य मिलते हैं, अंग्रेज़ी का शब्दरूप विज्ञान (Morphology) साधारण और हल्का है और हिन्दी का काफ़ी जटिल। परिपक्वन योजना के कारण कुछ नियम बच्चे के 2 साल के होने पर प्रकट होते हैं, कुछ चार या साढ़े चार साल में।

इससे जुड़ा हुआ है यह सवाल कि औद्योगीकरण के उत्तर में समाज में भाषाएं अतिपरिष्कृत कैसे हो गईं? मेरे ख़्याल में चौम्स्की का उत्तर होगा कि यह हमारी क्षमता की सीमा के अंदर है, मतलब, बाध्यताओं द्वारा सीमित परिधि के अंदर और मैं भी यही मानता हूं। चौम्स्की के लिए यह कहना सहज होगा कि होमो सेपिअंस होते हुए अगर हम किसी इमारत की दसवीं मंजिल से कूद जाएं तो निश्चय ही हम उड़ने नहीं लगेंगे। इस सीमा के होते हुए भी हम हज़ारों और काम कर सकते हैं जैसे वायलिन बजाना, सितार बजाना आदि। परन्तु एक ऊपरी सीमा भी है, वह यह कि यदि मैं एम्पायर स्टेट बिल्डिंग की छत से कूद जाऊं तो मैं नीचे आ गिरूंगा, यह शरीर की सीमा है। चौम्स्की यह भी कहेंगे कि जो जटिलताएं हमारे परिवेश की जटिलताओं के कारण उभरी हैं– शायद पूंजीवाद के बाद के समय की जटिलताएं जहां हमें कई प्रकार की जानकारियों से जूझना पड़ता है– वे भी मानव मस्तिष्क की सीमा के भीतर ही हैं। चौम्स्की से मेरा विवाद इसी मुद्दे पर रहा है। मैं मानता हूं कि एक निर्दिष्ट कौशल होता है पर मेरे विचार में (चौम्स्की के विपरीत) वह केवल आंशिक रूप से निर्दिष्ट होता है। मैं कहता हूं कि मस्तिष्क के बारे में सुव्यक्त करने योग्य बहुत कम चीज़ें हैं पर वे कहते हैं कि उसमें काफ़ी चीज़ें यंत्रस्थ (Hard-Wired) होती हैं।

राजेन्द्र सिंह : कनाडा के मांट्रियल विश्वविद्यालय में भाषा वैज्ञानिक हैं।
विद्या भवन सोसायटी के साथ गहरा जुड़ाव।
साक्षात्कारकर्ता : रमा कांत अग्निहोत्री, ह्रदय कांत दीवान, प्रसून कुमार,
स्नेहल शाह, नम्रता बत्रा।

इंसान की ज़िंदगी में भाषा के सफर की कहानी दिलचस्प है।
भाषा की बनावट,
बच्चा भाषा कैसे सीखता है?
ज्ञान के सृजन में भाषा की भूमिका
जैसे अहम सवालों पर रोशनी डालते महत्त्वपूर्ण दस्तावेज
(हिंदी और अंग्रेज़ी में उपलब्ध)

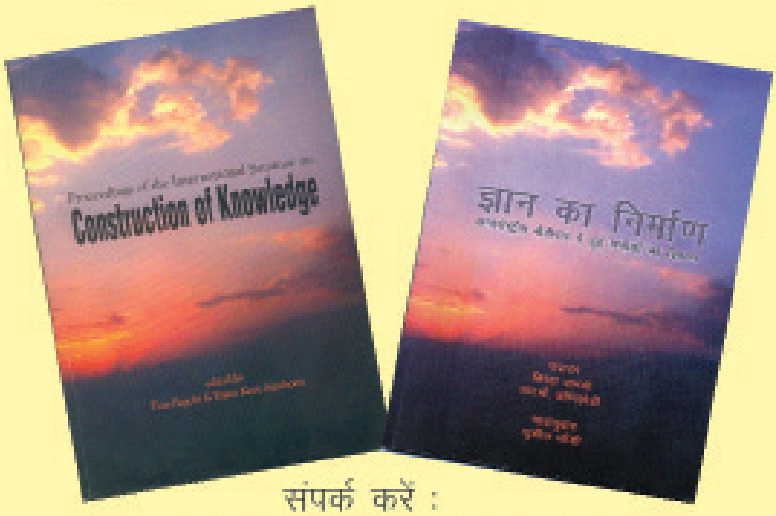

संपर्क करें :
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

अंगूठे का निशान

केदारनाथ सिंह

किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर

ये काले-काले अक्षर
भूरे-भूरे अक्षर
किसने बनाये

खड़िया ने
चिड़िया के पंख ने
दीमकों ने
ब्लैकबोर्ड ने

किसने
आखिर किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर

'मैंने...मैंने-
सारे हस्ताक्षरों को
अंगूठा दिखाते हुए
धीरे से बोला
एक अंगूठे का निशान

और एक सोख्ते में
गायब हो गया

साभार- अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन नई, दिल्ली, पटना।